साहित्य

डॉ. सी. आर. रेड्डी

डी. आंजनेयुलु

H
891.482 092
R 246 R

भारतीय
साहित्य के

H
891.482 092
R246R

INDIAN INSTITUTE
OF
ADVANCED STUDY
LIBRARY, SHIMLA

डॉ. सी. आर. रेड्डी

अस्तर पर छपे मूर्तिकला के प्रतिरूप में राजा शुद्धोदन के दरबार का वह दृश्य है, जिसमें तीन भविष्यवक्ता भगवान बुद्ध की माँ-रानी माया के स्वप्न की व्याख्या कर रहे हैं। उनके नीचे बैठा है मुंशी जो व्याख्या का दस्तावेज लिख रहा है। भारत में लेखन-कला का यह सम्भवतः सबसे प्राचीन और चित्रलिखित अभिलेख है।

नागार्जुनकोण्डा, दूसरी सदी ई.
सौजन्य : राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्ली

भारतीय साहित्य के निर्माता

डॉ. सी. आर. रेड्डी

लेखक

डी. आंजनेयुलु

अनुवादक

विजयराघव रेड्डी

साहित्य अकादेमी

Dr. C. R. Reddy (डॉ. सी. आर. रेड्डी)
Hindi Translation by P. Vijayaraghava Reddy
of D. Anjaneyalu's Monograph in English

Sahitya Akademi, New Delhi (1992) Rs. 15

© Sahitya Akademi
First Edition : 1992

Library IIAS, Shimla
H 891.482 092 R 246 R
00116054

Published by :
Sahitya Akademi
Head Office :
Rabindra Bhavan, 35, Ferozeshah Road,
New Delhi 110 001

Sales Department :
Basement in 'Swati', Mandir Marg, New Delhi 110 001

Regional Offices :
172, M. M. G. S. Marg, Dadar (East), Bombay 400 014
Jeevan Tara, 23A/44X, Diamond Harbour Road, Calcutta 700 053
Guna, 304-305 Anna Salai, Teynampet, Madras 600 018
ADA Rangamandira, 109 J. C. Road, Bangalore 560 002

ISBN 81-7201-284-5

H
891.482 092
R 246 R

Printed by :
Sripad Offset
194/2, Shivkrupa
Sadashiv Peth, Pune-411 030

मूल्य 15 रुपये

116054
17.11.04

विषय सूची

1.	प्रस्तावना	
2.	प्रारंभिक जीवन	3
3.	मद्रास और कैम्ब्रिज	5
4.	बड़ौदा और मैसूर	9
5.	राजनीति में प्रवेश	12
6.	उपकुलपति	15
7.	कवि	19
8.	आलोचक	27
9.	निबंधकार	38
10.	समाजशास्त्री	43
11.	युग प्रवर्तक	46
	रेड्डी जी के जीवन की मुख्य घटनाएँ	51
	परिशिष्ट - साहित्य : कार्य संपादन के उपकरण के रूप में	53
	संदर्भ ग्रंथ सूची	57

1

प्रस्तावना

तेलुगु मूलतः द्रविड परिवार की भाषा है, बाह्य रूप से देखने पर भले ही उस में प्रचुर मात्रा में, संस्कृत के शब्द प्रयुक्त किये जाते हो । तुलनात्मक भाषाविज्ञान के विदेशी और भारतीय विद्वानों ने जो निष्कर्ष निकाले हैं, उनको यदि हम स्वीकार करते हैं तो हमें इस तथ्य को स्वीकार करना होगा कि तेलुगु द्रविड परिवार की भाषा है । उन विद्वानों की वस्तुनिष्ठ, एवं वैज्ञानिक अनुशीलता की पद्धतियाँ ही ऐसी हैं कि हमें इस में संदेह करने की कोई गुंजाइश ही नहीं रहती । हमें यह भी महसूस होगा कि वे ऐसे विचारों से परे हैं जो ऐतिहासिक तथ्यों को अकसर तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत करते हुए संकुचित प्रांतीयतावाद को फैलाते हैं ।

तेलुगु के लिखित साहित्य का इतिहास यदि एक हज़ार वर्ष पुराना है तो उस के आधुनिक साहित्य का इतिहास एक सौ साल से कुछ अधिक पुराना है । तेलुगु साहित्य में आधुनिक युग का प्रारंभ उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध से माना जाता है । अपने समय के तथा भावी पीढ़ियों के साहित्यकारों को प्रभावित करनेवाले आधुनिकों में तीन-चार लोगों के नाम आदर के साथ लिये जा सकते हैं ।

ब्रिटिश राज्य के प्रशासनिक अधिकारी सी. पी. ब्राउन तथा उन के समय के पाश्चात्य विद्वानों ने, और उन के द्वारा निर्मित शब्द कोश एवं व्याकरण ग्रंथों ने तेलुगु की शब्दावली के आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में सहयोग प्रदान किया । बाद में इस प्रक्रिया को दूसरे स्तर पर 'गिडुगु राममूर्ति पंतुलु' ने आगे बढ़ाया । पंतुलु जी सामान्य बोलचाल की भाषा को साहित्य के माध्यम के रूप में स्वीकार कराने में आजीवन संघर्ष करते रहे ।

संभव है कि आज का लेखक 'परवस्तु चिन्नय सूरी' (1806-62) को आधुनिक युग के अग्रदूत न माने । कुछ लोग यह भी दलील दे सकते हैं कि उन्होंने तेलुगु भाषा की प्रगति में रोड़े अटकाये । लेकिन वैयाकरण एवं गद्य लेखक के रूप में उन की भूमिका को नजरंदाज नहीं किया जा सकता । उन के पथ से हटकर भिन्न मार्ग को तय करने के संदर्भ में तो उन की प्रमुखता को स्वीकार करना होगा । कंदुकूरि वीरेशलिंगम् पंतुलु ने प्रथमतः उन्हें आदर्श के रूप में स्वीकार किया और बाद में उन के मार्ग से अपने को वे संभवतः सचेत रखने लगे । अन्यथा वीरेशलिंगम् जी आधुनिक साहित्यिक विधाओ में अग्रणी, एवं बहु जन सुलभ सरल तेलुगु गद्य लेखक के रूप में अपने को स्थापित नहीं कर पाते । यहाँ यह भी स्वीकार करना होगा कि अंग्रेजी के उत्कृष्ट ग्रंथों से भी वे प्रभावित रहे हैं ।

2 डॉ. सी. आर. रेड्डी

डॉ. सी. आर. रेड्डी (डॉ. कट्टमंचि रामलिंगा रेड्डी) दोनों से प्रगाढ़ रूप से प्रभावित हुए । कंदुकूरि वीरेशलिंगम् तथा चिन्नय सूरी के गुणों के कुछ समान लक्षण डॉ. रेड्डी में परिलक्षित होते हैं । वीरेशलिंगम् के सामाजिक दृष्टिकोण तथा नवीन रचना प्रवर्तन और चिन्नय सूरी की क्लासिकी अभिमुखता तथा परंपरा के प्रति अनुराग, इन सब के सुंदर समन्वय को हम डॉ. रेड्डी में देखते हैं । डॉ. रेड्डी की गद्य रचना में जो मधुरिमा स्थान पा रही थी, उस से यह प्रमाणित हो जाता है कि चिन्नय सूरी उनके वरेण्य गद्य लेखक थे और वीरेशलिंगम् आदर्श साहित्य-स्रष्टा ।

अतीत एवं वर्तमान में डॉ. रेड्डी जैसे भारतीय विद्वान कदाचित नहीं मिलते जिन्होंने देशीय पद्धतियों को छोड़े बिना समकालीन पाश्चात्य चिंतन धारा से अपने आप को बराबर संबद्ध रखा हो । सामान्यतया ऐसे मेधावी विद्वान मिलते हैं जो निज परंपरा से कम अभिज्ञ रहते हुए पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान में अधिक विद्वत्ता हासिल कर चुके होते हैं, भले ही उन में निज भाषा के प्रति अभिमान रहता हो । इस के विपरीत ऐसे भी विद्वान भी मिलते हैं जो निज भाषा व परंपराओं पर पूर्ण अधिकार रखते हैं, लेकिन पाश्चात्य परंपरा से उन का वास्ता बहुत सीमित रहता है ।

रेड्डी जी बहुमुख प्रतिभा संपन्न व्यक्ति के रूप में हमारे सामने प्रकट होते हैं । कई दृष्टियों से कन्नड के बी. एम. श्रीकंठय्या, तमिल के बी. आर. राजम् अय्यर, हिंदी के रामचंद्र शुक्ल और बंगला के माइकेल मधुसूदन दत्त आदि आधुनिकता के अग्रगामी साहित्यकारों से डॉ. रेड्डी की तुलना की जा सकती है । डॉ. रेड्डी को समग्र रूप से समझने का तात्पर्य यही होगा कि एक स्तर पर यूरोपीय - भारतीय परंपराओं और दूसरे स्तर पर आर्य - द्रविड परंपराओं के संभावित सार्थक संगमन को समझना ।

2

प्रारंभिक जीवन

कट्टमंचि आंध्र प्रदेश के चित्तूर जिले का एक छोटा गाँव है । चित्तूर नगर के पूरब में एक मील की दूरी पर स्थित यह गाँव अब चित्तूर नगर पालिका का अंग बन गया है । जिस प्रकार 'गोल्डस्मित', के लिए 'अबर्न', सुरम्य गाँव है, उसी प्रकार कट्टमंचि उस के निवासियों के लिए उस घाटी का सब से मनोरम गाँव है । साल में एक बार तीन दिनों तक बहनेवाली गाँव की छोटी नदी, तीन वर्षों में एक बार भरनेवाले गाँव के तालाब को लेकर गाँववासी बढ़ा-चढ़ाकर आपस में कहते-सुनते रहते हैं । हरे भरे आम एवं नारियल के बगीचों से घिरा वह गाँव सुखद शीतलता का प्रतिरूप है ।

दक्षिण भारत के ख्याति प्राप्त दो मनीषियों ने इसी गाँव में जन्म लिया । प्रथम व्यक्ति हैं - पी. आनंदाचार्युलु, प्रथम आंध्र निवासी जिन्हों ने पहली बार भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष पद ग्रहण करने का गौरव प्राप्त किया । दूसरे हैं - कट्टमंचि रामलिंगा रेड्डी, शिक्षाविद, राजनीतिज्ञ, निबंधकार, अर्थशास्त्री, कवि, एवं आलोचक । सभी विशेषताओं से परिपूर्ण एक व्यक्तिव्य ।

10 दिसंबर, 1880 को रामलिंगा रेड्डी जी का जन्म हुआ । आंध्र प्रदेश के रेड्डी लोग शारीरिक दृढ़ता, कठिन परिश्रम, अतिथि सत्कार, धीरज और दृढ़ संकल्प के लिए ख्याति प्राप्त कृषक जन हैं । मध्य युगों में इन के पूर्वज जागीरों के शासक हुआ करते थे । इस कारण इन में प्रतिष्ठा, गरिमा, आत्म-सम्मान आदि उदात्त गुणों का विकास हुआ है ।

रामलिंगा रेड्डी के परिवार का मुख्य पेशा खेती-बाड़ी होने पर भी, उस परिवार के लोगों में प्राचीन साहित्य के पाण्डित्य में अच्छी पैठ थी । चित्तूर जिले के संपन्न मध्यम वर्ग के परिवारों में प्राचीन काव्य-साहित्यों में पाण्डित्य-अभिनिवेश सहज गुण के रूप में प्रतीत होता है ।

'भास्कर शतकमु' समेत अनेक ग्रंथ लेखक के रूप में ख्याति प्राप्त उन के परनाना 'रामलिंगा रेड्डी' के नाम पर ही पर पोते का नामकरण किया गया । बालक रामलिंगा रेड्डी के पिता जी का नाम सुब्रह्मण्य रेड्डी है जो पेशे से वकील थे । वे कवि के रूप में मशहूर थे ही, फिर भी पंडित के रूप में आपने अधिक ख्याति अर्जित की थी । उन्होंने 'भारत सार रत्नावली', और 'भागवत सार मुक्तावली' नामक दो नीति परक ग्रंथो का संकलन कर प्रकाशित कराया । प्रथम श्रेणी के सत्यनिष्ठ विधिवेत्ता के रूप में उन्होंने नाम कमाया । उन दिनों में ही जब कि महिलाओं का दायरा रसोई तक ही सीमित रहता था, रामलिंगा रेड्डी

के निकटतम रिश्तेदारों के परिवार में एक महिला ने भक्ति रस प्रधान 'वरदराज शतकमु' का प्रणयन किया ।

रेड्डी जी के परिवार के सभी सदस्यों को तेलुगु के महाभारत, भागवत और रामायण ग्रंथों का अनिवार्य रूप से अध्ययन-पारायण करना होता था । बचपन से ही इन महान ग्रंथों से परिचित रामलिंगा रेड्डी को आंध्र महाभारत ने अधिक आकृष्ट किया । किशोर अवस्था में ही महाभारत का सुंदर ढंग से पारायण करने के अतिरिक्त वे उस की व्याख्या भी इस ढंग से करते थे कि प्रौढ़ भी दंग रह जाएँ । परिवार की नानी, बुआ, फूफी आदि बड़ी बूढ़ियों से कई लोक कथाएँ व परी कथाएँ सुनने का सुअवसर रेड्डी जी को मिला था । करीब बारह साल की आयु तक आप लगभग ऐसी सौ कथाएँ जान चुके थे । उन का अटूट विश्वास था कि शिक्षा व संस्कार व संस्कृति का संबंध साक्षरता तक ही सीमित नहीं है ।

कट्टमंचि में प्राथमिक शिक्षा समाप्त कर उन्होंने चित्तूर में हाईस्कूल में दाखिला लिया । इस स्कूल में कार्यरत तेलुगु अध्यापक 'कुप्पनय्यंगारु' ने जो उन के परिवार जनों का मित्र था, तेलुगु के व्याकरण, शब्द-शास्त्र व छंदशास्त्र के रहस्यों के प्रति रेड्डी जी का ध्यान आकृष्ट कराया । कृप्पनय्यंगार की देखरेख में रेड्डी जी ने नलोपाख्यानम् (निषाद राजा नल से संबंधित गाथा) और 'सर्व लक्षण सार' (तेलुगु भाषाशास्त्र पर प्रामाणिक ग्रंथ) का गहन अध्ययन किया । रेड्डी जी बचपन से ही प्रतिभावान छात्र थे जो तेलुगु, अंग्रेजी, इतिहास व भूगोल आदि विषयों में अधिक तेजस्वी थे । लेकिन गणित उन के लिए बचपन में ही नहीं, बाद में भी एक हौआ था ।

उन्होंने 1890 में छठी कक्षा में प्रवेश पाकर 1896 में स्कूल फाइनल (एस.एस.एल.सी. जो उस समय ग्यारहवीं कक्षा हुआ करती थी) की परीक्षा उत्तीर्ण की । परीक्षाओं के लिए रटने की आदत उन्हें नहीं थी । श्रीमती एनी बिसेंट के व्याख्यान सुनकर 'थियोसफ़ी' सिद्धांतों से आकृष्ट रेड्डी जी बचपन से ही उस समाज के कार्यक्रमों में अधिक रुचि देने लगे और फलतः वे अपनी स्कूली पढ़ाई के लिए पर्याप्त समय दे न पाते थे । परीक्षाएँ जब सिर पर आतीं, तब वे थोड़ी बहुत तैयारी के साथ परीक्षाएँ लिख कर अच्छे अंकों से उत्तीर्ण होते थे । हाईस्कूल की पढ़ाई की समाप्ति तक उन्होंने धारा प्रवाह अंग्रेजी में बोलने तथा तेलुगु में कविता करने का हुनर हासिल कर रखा था । तब तक चित्तूर जैसे सीमित दायरे से बाहर के विशाल विश्व को समझने का सामर्थ्य उन्हों ने अर्जित कर लिया था ।

3

मद्रास और कैम्ब्रिज

अपने समय के अन्य दक्षिण भारत के युवकों के समान रेड्डी जी भी कालेज की शिक्षा के लिए मद्रास गये । सामाजिक सहजीवन एवं शैक्षणिक स्तर केलिए विख्यात मद्रास क्रिश्चियन कालेज ने उन्हें आकर्षित किया । इसलिए उन्होंने उस कालेज में प्रवेश लिया । 'स्काटिश मिशन' द्वारा संचालित यह कालेज देश भर के कालेजों में अति प्राचीन है । असामान्य चरित्रवान तथा प्रतिबद्ध अध्यापक डॉ. विलियम मिल्लर उस समय उस कालेज के प्राचार्य थे ।

अपने युवा छात्रों में अनुशासन-प्रियता, अनवरत-परिश्रम, आत्म-विश्वास और आत्माभिव्यक्ति आदि उत्तम गुणों का विकास हो, इस के लिए डॉ. मिल्लर हमेशा प्रयत्नशील रहते थे । उन के व्यक्तिक्त्व से रामलिंगा रेड्डी अधिक प्रभावित हुए । इतिहास के आचार्य 'केल्लेट' ने रेड्डी जी को इतिहास की ओर आकृष्ट कराया । दर्शन शास्त्र के मूल सूत्रों पर गंभीर चिंतन-मनन करने के लिए उन्हें उत्प्रेरित कर दर्शन शास्त्र के आचार्य डॉ. 'स्किनर'ने रेड्डी जी के मन पर अमिट छाप डाल दी ।

कालेज में भारतीय अध्यापक भी थे जो अपनी असामान्य विद्वत्ता तथा छात्रों के कल्याण के प्रति अपनी समर्पित भावना के लिए ख्याति प्राप्त थे । कालेज की तेलुगु असोशियेशन, 'आंध्र भाषाभिरंजनी संघ'के अध्यक्ष व तेलुगु के आचार्य 'समर्थ रंगय्या सेट्टी' रेड्डी जी की साहित्यिक गतिविधियों में प्रोत्साहक-स्रोत थे । महा पंडित एवं नाटककार 'वेदम् वेंटराय शास्त्री' उस कालेज में संस्कृत पंडित के रूप में काम करते थे । द्वितीय भाषा के रूप में तेलुगु पढ़ रहे रेड्डी जी को शास्त्री जी का सदा मार्गदर्शन मिलता रहा ।

आंध्र भाषाभिरंजनी संघ के कार्यक्रमों में रेड्डी जी सक्रियता से भाग लेते थे । उस संघ के द्वारा आयोजित चर्चा- परिचर्चाओं में, अन्य समारोहों में वे उत्साह से भाग लेते थे । उस संघ के तत्वावधान में आयोजित एक प्रतियोगिता के लिए रेड्डी जी ने 'मुसलम्म मरणमु' शीर्षक से एक खंड काव्य लिख कर प्रस्तुत किया और पुरस्कार भी जीता ।

कालेज के दिनों मे ही उन्होंने अंग्रेजी एवं तेलुगु दोनों भाषाओं में वाग्विदग्ध व वाक्पटु वक्ता के रूप में नाम कमाया । जब सरकार ने लोकमान्य बालगंगाधर टिळक को बंदी बनाया, तब उस महान देशभक्त के प्रति छात्र जगत में सहानुभूति जगाने में श्री रेड्डी ने अग्रणी भूमिका निभायी ।

कालेज में बिताये पाँच वर्षो में रेड्डी जी ने अपने समीक्षात्मक और सृजनात्मक सामर्थ्य को बखूबी प्रदर्शित किया । आंध्र महाभारत तो हमेशा उन का प्रिय ग्रंथ रहा, अलावा इसके उनका ध्यान प्रबंध कवि 'पिंगळि सूरना' की ओर भी आकृष्ट हुआ । सूरना का प्रबंध काव्य 'कळापूर्णोदयमु' ने उन्हें अत्यंत आकर्षित किया । कालेज के आंध्रभाषिभिरंजनी संघ के द्वारा 1899 में आयोजित एक सभा में उन्होंने कळापूर्णोदयमु पर जो आलेख पढ़ा था, उस में उस काव्य की खूबियों व कामियों पर संक्षेप में चर्चा की । इस आलेख को उन की भावी विस्तृत व प्रखर समीक्षा प्रक्रिया की शुरुआत कह सकते हैं । बाद में यही समग्र रुप से विस्तार पाकर 'कवित्वतत्वविचारमु' नामक ग्रंथ के रुप में प्रकाश में आया ।

इतिहास और दर्शन शास्त्र के विषयों मे प्रतिष्ठा के साथ 1902 में बी.ए. डिग्री प्राप्त करने के बाद रेड्डी जी को भारत सरकार ने ब्रिटन में उच्च अध्ययन के लिए छात्रवृत्ति प्रदान की । उन्होंने कैम्ब्रिज के सेंट जान्स कालेज में प्रवेश लिया । वहाँ उन्हों ने 'एक्जीबिशन' और 'राइट' पुरस्कार जीते । वे कालेज के निधि न्यास की आय प्राप्त करने का अधिकारी विद्यार्थी घोषित किये गये । इतिहास विषय में 'ट्राइ पास आनर्स' परीक्षा के लिए पढ़ते समय इतिहास के अतिरिक्त अर्थ शास्त्र तथा दर्शन शास्त्र भी उन के अभिरुचि के विषय रहे ।

कैम्ब्रिज का वातावरण मुक्त चिंतन व राजनैतिक उदारता के कारण जिज्ञासु वृत्ति एवं उदात्त व्यक्तित्व के निर्माण के इच्छुक छात्रों के लिए प्रेरणाप्रद रहता था । रामलिंगा रेड्डी 1905 में कैम्ब्रिज लिबरल क्लब के सचिव निर्वाचित हुए । बाद में 'कैम्ब्रिज यूनियन' के लिए उनका उपाध्यक्ष के रूप में चुन लिया जाना एक महत्त्वपूर्ण घटना थी । उस प्रतिष्ठा-प्रद पद केलिए चुने गये वे प्रथ म भारतीय थे । कई दशकों के बाद 'मोहन कुमार मंगलम्' ने उस यूनियन के प्रथम भारतीय अध्यक्ष के रूप में चुनकर रेड्डी जी का रेकार्ड तोड़ा ।

जब वे कैम्ब्रिज में पढ़ते थे, उन दिनों अध्यापकों में और छात्रों में भी अधिक मेधावी रहते थे । अध्यापकों में 'गोल्सवर्दी लोब्स डिकिन्सन', 'डेविड मेक्टगार्ड' जैसे मौलिक प्रतिभा संपन्न व्यक्ति थे जो नयी चिंतन सरणी की हिमायत करते थे । रेड्डी जी के निकट समकालीनों में 'लिट्टन स्ट्राची', 'लियोनार्ड उल्फ़', 'ई. एम. फारस्टर', 'क्लाइव बील' आदि अन्य विद्वान थे, जो बाद में 'ब्लूमसवर्दी ग्रूप' के शिरमौर कहलाये । 'जान मेनार्ड कीन्स', 'मोर्गन फिलिप्स प्रइस' और 'जे. सी. स्वेर' उन के घनिष्ठ मित्रों में से थे । उस समय के 'प्रोविस बंधु', 'लेविलिन जान कौपर' जैसे उदीयमान बुद्धिजीवियों एवं लेखकों से वे संपर्क बनाये हुए थे ।

ऐसे बुद्धिजीवियों के बीच संवादों में रेड्डी जी अपनी वाक्-पटुता तथा वाग्विदग्धता से इस प्रकार से पेश आते थे मानों चमकता सितारा हो । दुनिया भर के विषयों में से कोई भी विषय उन की चर्चाओं के लिए वर्जित न था । यहाँ तक कि स्वर्ग तक के विषय को एवं ईश्वर तक को वे अपनी चर्चाओं में खींच लाते थे । ईश-निंदा भी विधिवत् रहती हैं बशर्ते कि वह प्रतिभा मंडित हो । उन के वाक्-चातुर्य के नमूने के रूप में ये वाक्य दर्शनीय हैं :

"माना, ईश्वर सर्व शक्ति संपन्न हैं । अनादि, अनंत हैं । ईश्वर यदि सर्वशक्तिमान हैं तो क्या उन्हें आत्म-हत्या की इच्छा करने या आत्महत्त्या करने की आज़ादी नहीं रहती ? यदि है तो वे कैसे शाश्वत हैं ?"

अपने सहज स्वभाव के कारण दमकदार और अनादर सूचक वाणी में अगर वे बातें करते हैं तो इस का यह अर्थ नहीं लेना चाहिए कि वे दोषदर्शी, हृदयहीन या कटु स्वभाववाले हैं । इस बात के प्रमाण मौजूद हैं की वे मिलनसार, सामाजिक और उदारचेता ही नहीं थे अपितु सर्वदा प्रसन्नचित्त रहते थे । रेड्डी जी के कालेज की पढ़ाई के दिनों को याद करते हुए विख्यात साहित्यकार सर 'जान स्क्वैर'* ने यों कहा हैं :

" रेड्डी जब कैम्ब्रिज में पढ़ते थे तब वे 'एडमंड बर्क' की भाँति वाक्चातुर्य और प्रज्ञा-विवेक, इन दोनों गुणों से संपन्न थे । लेकिन किसी व्यक्ति का मान-सम्मान उन की वाक् चातुरी व प्रज्ञा के कारण नहीं होता । व्यक्ति के हृदयांतर्गत गुण ही दूसरे के हृदय को स्पंदित व अनुरंजित करते हैं । अपने प्रज्ञा विशेष के कारण से नहीं अपितु अपने व्यक्तित्व की विशिष्टताओं के कारण ही - उदारता, आदर्शवादिता (किसी भी प्रकार के दम्भ से परे) के कारण अपने परिचितों में से सामान्य से सामान्य व्यक्ति तक आप ने जो स्वार्थ रहित स्नेह, औदार्य, दिखाया, अपनी सहिष्णुता व सहन शक्ति के कारण ही कैम्ब्रिज में हम सब के वे चहेता बन गये ।"

अत्याधुनिक पाश्चात्य विचारों से परिवेष्टित होने तथा विश्वविद्यालय एवं उस के बाहर प्रबुद्ध अंग्रेज बुद्धिजीवियों की निरंतर संगति में रहने के बावजूद रेड्डी जी ने निज भाषा अनुराग का परित्याग नहीं किया ।

नयी अंतर्दृष्टि की खोज में वे निरंतर अपने आंध्र महाभारत के ज्ञान को नवीकृत किया करते थे और कळापूर्णोदयमु में निक्षिप्त निगूढ़ सौन्दर्य के अन्वेषण में अनवरत लगे रहते थे ।

उन पाँच वर्षों में जब कि वे इंग्लैंड में रहे रेड्डी जी अपनी राजनैतिक चिंतन और राष्ट्रीयता का समग्र रूप से सही परिप्रेक्ष्य में इस्तेमाल किया । विश्वविद्यालय के 'लिबरल क्लब' के उपाध्यक्ष के रूप में रहते समय क्लब के चुनाव प्रचारों में रेड्डी के भाषणों की बड़ी माँग रहती थी । कैम्ब्रिज यूनियन में भाषण देने केलिए 'लाजपत राय', 'गोखले' जैसे भारतीय नेताओं को ये आमंत्रित किया करते थे ।

गोखले के व्यक्तित्व से रेड्डी जी बहुत प्रभावित हुए । गोखले की राजनैतिक परिपक्वता, सुमधुर तार्किकता और भाषण के नपेतुले शब्द आदि ने रेड्डी जी पर शाश्वत छाप डाली है ।

---

* डॉ. सी. आर. रेड्डी निबंध और व्याख्यान नामक ग्रंथ के लिए प्रस्तुत डॉ. के. आर. श्रीनिवासय्यंगार के आमुख में से उद्धृत ।

रेड्डी जी विधि शास्त्र पढ़ना चाहते थे । लेकिन गोखले की सलाह पर वे विधि शास्त्र पढ़ने का विचार छोड़ कर अध्यापन वृत्ति स्वीकार करने केलिए तैयार हो गये । वे 1906 में 'ट्राइपास आनर्स' परीक्षा में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए । स्वदेश लौटने से पहले वे अमरीका भ्रमण पर जाकर वहाँ की शैक्षिक संस्थाओं का निरीक्षण कर आये । रुढ़िवादी अंग्रेजी परंपरा में पले रेड्डी जी को नयी दुनिया को पुराने दृष्टिकोण से देखना एक स्फूर्तिदायक अनुभव-सा लगा ।

बड़ौदा के दूरदर्शी राजा श्री शायाजी राव गायकवाड 'अपने राज्य को आधुनिक दृष्टि से विकसित करना चाहते थे । इस केलिए वे ऐसे प्रशिक्षित प्रतिभा संपन्न व्यक्तियों की खोज में थे जो इस दिशा में उन की मदद कर सके । उस से कुछ वर्ष पहले उन्हों ने इस के लिए 'अरविंद घोष' को चुना था जो क्रमशः बड़ौदा कालेज के उप प्राचार्य पद पर आसीन हुए । लेकिन दिन प्रति दिन बढ़ते राष्ट्रीयता आंदोलन की लहरों से अरविंद घोष अपने को बचा न सके । तब रामलिंगा रेड्डी को बड़ौदा कालेज के उस पद ने वरण किया ।

4

बड़ौदा और मैसूर

1908 में स्वदेश लौटकर रेड्डी जी ने गायकवाड के आमंत्रण पर बड़ौदा कॉलेज में आचार्य पद ग्रहण किया । वास्तव में यह पद इन के विदेशों से आगमन की प्रतीक्षा में रिक्त रखा गया था । कहते हैं कि रेड्डी जी के अमरीका भ्रमण का खर्च महाराजा गायकवाड ने वहन किया । कलकत्ता में तब शुरु किये गये राष्ट्रीय विद्यापीठ (नेशनल कॉलेज) में प्राचार्य पद स्वीकार करने के निमित्त जब अरविंद घोष ने त्याग पत्र दिया, तब उन के स्थान पर रेड्डी जी आचार्य एवं उप प्राचार्य के रूप में नियुक्त किये गये । यह उचित ही था कि कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के एक विद्वान स्नातक के स्थान पर उसी विश्वविद्यालय के दूसरे विद्वान स्नातक नियुक्त हुए । दूरदर्शी शासक गायकवाड रेड्डी जी से बढ़कर उस पद केलिए किसी दूसरे व्यक्ति को सोच भी कैसे सकते थे ?

रेड्डी जी बड़ौदा में अधिक समय तक नहीं रहे । फिर भी वे शीघ्र ही अच्छे अध्यापक माने जाने लगे । अंग्रेजी साहित्य, यूरोप का इतिहास, भारतीय अर्थशास्त्र का कोई भी विषय वे पढ़ाते उसे नयी व वैज्ञानिक पद्धति से पढ़ाते । छात्र उन की नवीन चिंतन प्रक्रिया तथा सुलभ ग्राह्य विश्लेषण प्रणाली से अधिक उत्तेजित होते । भले ही उन में अरविंद जैसे प्रगाढ़ पांडित्य न हो, फिर भी उन की शिक्षण विधि अनोखी होती थी । अपने छात्र जीवन के दिनों का स्मरण करते हुए स्वर्गीय के. एम. मुन्शी कहा करते थे कि रेड्डी जी की कक्षा का छात्र न होने पर भी मैं स्वेच्छा से उन के व्याख्यान सुनने केलिए उन की कक्षा में उपस्थित होता था । रेड्डी जी के व्याख्यानों के जादू से मंत्रमुग्ध होनेवालों में मुन्शी जी भी एक थे ।

गायकवाड के अनुरोध पर रेड्डी जी ने फिर एक बार विदेशों में शैक्षिक भ्रमण किया और इस बार केनडा, जपान व फिलीप्पीनस की शैक्षिक संस्थाओं का संदर्शन किया । लेकिन उन के अनुभवों के फल बहुत दिनों तक बड़ौदा तक ही सीमित नहीं रहे । विश्वविद्यालय-सुधारों पर आयोजित व्याख्यान माला में व्याख्यान देने केलिए 1909 में वे मैसूर आमंत्रित किये गये । मैसूर राज्य के दिवान सर वी. पी. माधव राव, जिन्हें रेड्डी जी के व्याख्यान सुनने का सुयेग मिला था, उन के व्याख्यानों से इतने प्रभावित हुए कि उन्हों ने अखिर रेड्डी जी को मैसूर राज्य की सेवा में सम्मिलित होने केलिए राजी करा दिया ।

मैसूर के महाराजा कालेज में रेड्डी जी के प्रति छात्रों में जो आदर था वह किसी अन्य आचार्य के प्रति न था । उन्हों ने वहाँ अंग्रेजी, इतिहास और तर्कशास्त्र विषय पढ़ाये । उन की अध्यापन-विधि पारंपरिक विधि से भिन्न होती थी । उन के व्याख्यान छात्रों को स्वयं

सोचने केलिए प्रेरित करते थे । औसत छात्रों से अधिक बुद्धिवाले छात्रों को वे उन की बोधन शक्ति में वृद्धि करते थे ।

उन के पूर्व छात्रों में से कुछ ने लिखित रूप में अपना अभिमत प्रकट किया कि अन्य अध्यापकों के दैनंदिन व्याख्यानों और कंठस्थ किये हुए पहले के विवरणों से थके हुए हम छात्रों को उन के व्याख्यान ऐसे लगते थे मानों दिन भर के दमघोंट वातावरण के बाद सुहावनी हवा चल रही हो । साधारणतया अध्यापक छात्रों को कक्षा में नोट्स लिखवाते हैं । रेड्डी जी नोट्स लिखवाते नहीं । इस नीरस प्रवृत्ति को वे प्रोत्साहित नहीं करते । हर छोटी चीज़ में छात्रों की मदद कर उन्हें पंगु बनाना उन्हें पसंद नहीं था । वे छात्रों को स्वावलंबी बनाना चाहते थे । छात्रों का वे इस प्रकारसे मार्गदर्शन करते थे कि वे स्वयं खोज करके इतिहास की गति को समझें । कक्षा में उनका 'एडिसन' के 'स्पेक्टेटर' निबंधों को पढ़ाने का ढंग निराला होता था । इस से एडिसन का सौम्य हास्य उन के सामने पर्त दर पर्त खुल कर प्रकट होता था और छात्र आनंद विभोर होकर नयी अनुभूति को पाते थे । सुपरिचित मंद मुस्कान के साथ पढ़ते समय वे आवश्यकता के अनुसार अपने कंठ स्वर में परिवर्तन लाते थे । शुष्क विषय जैसे तर्कशास्त्र जैसा रूखा सूखा विषय भी उन की जुबान में सजीव होकर युवा छात्रों में रुचि पैदा करता था । कक्षा के बाहर अक्सर वे छात्रों से कहा करते थे कि तर्कशास्त्र मात्र मानव की तर्कणा शक्ति की सीमाओं को दर्शा सकता है । जिस तरह 'टेन कमांडमेंट्स' मानव को संत महात्मा नहीं बना सकते उसी प्रकार तर्कशास्त्र उसे पूर्ण मानव नहीं बना सकता ।

रेड्डी जी के मैसूर प्रवास के प्रारंभिक दिनों में जब युवाराज यूरोप के भ्रमण पर जा रहे थे, तब रेड्डी जी से कहा गया कि वे भी उन के साथ चले । इस मौके से फ़ायदा उठाकर उन्हों ने यूरोप के देशों की शैक्षिक संस्थाओं का संदर्शन किया । बाद में शैक्षिक संस्थाओं के संदर्शन के उद्देश्य से रेड्डी जी ने पूरब के देशों का भ्रमण किया । इन दोनों भ्रमणों के बाद रेड्डी जी ने सरकार को जो रिपोर्ट पेश की थी उस में प्राक-पश्चिम देशों की शैक्षिक व्यवस्थाओं में से अच्छा निचोड़ का विवरण प्रस्तुत किया । 1915 में मैसूर में विश्वविद्यालय की स्थापना करने केलिए एक योजना बनाने को उन से कहा गया । उस योजना को तैयार करने केलिए उन की पहले पेश की गयी रिपोर्ट पूर्वरंग के रूप में काम आयी ।

अगले वर्ष, शिक्षण, शोध और कॉलजों को संबद्ध करने की सुविधाओं के साथ एक नया विश्वविद्यालय अस्तित्व में आया । रेड्डी जी महाराजा कालेज के प्राचार्य के उन्नत पद पर नियुक्त किये गये । उस पद पर आप 1916-17 में दो वर्ष कार्य करते रहे । कालेज के पुराने विभागों के आधुनिकीकरण के अतिरिक्त आपने नये विभाग खुलवाने में भी पहल की । उन्हीं के प्रयासों से उस कॉलेज में तेलुगु विभाग शुरु हुआ । उस विभाग में 'श्री' राळ्लपल्लि अनंतकृष्ण शर्मा' प्रथम तेलुगु पंडित के रूप में नियुक्त किये गये जो परवर्ती काल में विख्यात विद्वान तथा असामान्य सत्यनिष्ठ समालोचक के रूप में प्रसिद्धि अर्जित की थी । जब कभी समय मिलता तब वे इन्हीं के साथ बैठकर आंध्र महाभारत का अध्ययन किया करते थे ।

1918 में ही जब कि रेड्डी जी 40 साल की आयु भी पार न कर चुके थे पूरे राज्य केलिए 'इनस्पेक्टर जनरल आफ़ एजुकेशन' के रूप में नियुक्त किये गये । एक भारतवासी को तिस पर दूसरे राज्य के व्यक्ति को ऐसा सम्मान मिलना उन दिनों असाधारण बात थी, इतनी छोटी उम्र में उतने महत्त्वपूर्ण विभाग की जिम्मेवारी को सँभालना बड़ी बात थी ।

नये पद पर रेड्डी जी बने रहना नहीं चाहते थे । शिक्षा व्यवस्था को लीक से हटाने का उन्होंने संकल्प किया । उन सभी गाँवों में जहाँ स्कूल नहीं थे वहाँ उन्होंने पाठशालाओं की स्थापना करने केलिए कदम उठाये । शिक्षा केलिए अधिक अनुदान को प्राप्त करने केलिए पूरे प्रयास किये । हरिजन बच्चों केलिए सभी स्कूलों में प्रवेश की अनुमति प्रदान करना रेड्डी जी का सनसनीखेज कदम था । किसी भी क्षेत्र में अस्पृश्यता निवारण केलिए किये गये उपायों में यह सर्व प्रथम उपाय था जिस का श्रेय रेड्डी जी को है । इस कार्य से रेड्डी जी को सब तरफ़ से विशेषकर कुलीन वर्ग से बड़े विरोध का सामना करना पड़ा था । फिर भी विधान सभा के सदस्यों के समर्थन तथा महाराजा की सहानुभूति से आखिरकर वे इस कार्य में सफल हो पाये ।

मैसूर में रामलिंगा रेड्डी के अनुकूल ही सभी कार्य चल रहे थे । कर्तव्य-निष्ठा में ख्याति के साथ छात्र-समूह में विशेष आदर प्राप्त कर रेड्डी जी शिक्षा विभाग में उच्चतम पद पर पहुँच गये थे । किसी प्रकार का असंतोष उन्हें वहाँ नहीं था । पता नहीं क्यों एक दिन आपने एकाएक अपने पद से इस्तीफ़ा दिया । वज्रपात-सा यह समाचार जनता तक पहुँच गया । कुछ लोगों ने समझा कि अपने राज्य मद्रास की राजनीति में अपनी किस्मत आजमाने केलिए उन्हों ने ऐसा किया होगा । कुछ लोगों ने कुछ और कहानियाँ बुनीं । अचानक वे मैसूर क्यों छोड़ गये, यह आज तक रहस्य ही बना हुआ है ।

मैसूर में उन के प्रवास का समय दो कार्यों केलिए बड़ा महत्त्वपूर्ण रहा । एक महात्मा गांधी जी के अस्पृश्यता निवारण आंदोलन की पूर्व सूचना के रूप में राज्य के सभी स्कूलों में हरिजन बच्चों के प्रवेश की व्यवस्था, और दो, 1911-12 में भारतीय अर्थव्यवस्था पर 'भारत अर्थ शास्त्रमु' नाम से प्रथम बार तेलुगु में शोध ग्रंथ लिखना । इस ग्रंथ का प्रकाशन 1914 में मद्रास की विज्ञान चंद्रिका मण्डली ने किया ।

5

राजनीति में प्रवेश

1921 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नेतृत्व में चल रहे स्वतंत्रता आंदोलन के कारण देश में सर्वत्र लड़ाई के नारे बुलंद थे । सब ने यह आशा की थी कि 'मॉंटेगचेम्सफ़र्ड योजना' के अनुसार सरकार नया विधान अमल में लाएगी । इस नये विधान के एक अंश के रूप में मद्रास में 'जस्टिस पार्टी' अधिकार में आयी । मैसूर राज्य के पद से छुटकारा पाकर आये रेड्डी जी मद्रास की राजनैतिक हलचल में सराबोर हो गये । चित्तूर के अपने मित्रों के अतिशय अनुरोध के कारण उन का झुकाव राजनीति की ओर बढ़ा । द्वितंत्र-प्रणाली की कमियों व सीमाओं का ज्ञान उन को था । फिर भी नये संविधान पर उन्हें अटूट विश्वास था ।

अगर वे चाहते तो राजनीति में उच्च पदों केलिए प्रयत्न कर सकते थे । आखिर राजनीतिक कार्य प्रणाली में अपने लिए एक स्थान बनाने केलिए प्रयत्न कर सकते थे । ब्रिटिश सरकार के आशीर्वाद से उत्पन्न जस्टिस पार्टी में वे शामिल थे । वे आसानी से शासन परिषद केलिए चुन लिये गये थे । लेकिन रेड्डी जैसे स्वतंत्र चेता व्यक्तित्व को सांप्रदायिकता, अधिकारों केलिए होड़ से लथपथ राजनीतिक वातावरण रास न आया । जैसे डॉ. के. आर. श्रीनिवास अय्यंगार ने कहा था 'यह रेड्डी जी के जीवन में एक गलत कदम था बनिस्वत एक नयी शुरुआत के ।'

पाश्चात्य प्रणाली में सुशिक्षित उदारचेता तथा लोकतंत्र की कार्यप्रणाली के संबंध में उच्च आदर्श रखनेवाले रेड्डी जी को अधिकार लिप्सा से एवं हमेशा अधिकार की ताक में रहनेवाले शासक दल के स्थानिक राजनेतागण के साथ पटरी बिठाना मुश्किल था । उन्हें शासक दल से अलग होने में ज्यादा समय न लगा । 'पानगल मंत्रिमंडल' की अविवेकपूर्ण और अवांछनीय नीतियों से विरक्त हो कर उन्हों ने सरकार के विरूद्ध अविश्वास प्रस्ताव रखा । अविश्वास प्रस्ताव पेश करते हुए रेड्डी जी ने जो भाषण दिया वह चिरस्मरणीय है । मलबार और आंध्र प्रांत में हो रहे पुलिस जुल्म और सरकार की अलोकतांत्रिक नीतियों पर उन्हों ने कड़ा प्रहार किया ।

समान विचार रखनेवाले मित्रों के सहयोग से उन्हों ने कुछ ही समय में 'युनायटेड नेशलन पार्टी' नाम से एक नयी पार्टी की स्थापना की । सरकार को गिराने योग्य सदस्यों की संख्या इस नयी पार्टी में न होने पर भी (सरकार द्वारा नामज़द सदस्य सरकार के पक्ष

में रहने से सरकार को गिराना संभव न होने पर भी) इस पार्टी ने मंत्रिमंडल की नाक में दम कर रखा था ।

शिक्षा मंत्री बनने केलिए आवश्यक प्रतिभा, प्रशिक्षण तथा अन्य योग्यताएँ रखनेवाले रेड्डी जी को शिक्षा मंत्री न बनने से उन के मित्र एवं प्रशंसक अक्सर खिन्न होते थे । सरकारी नीतियों के प्रखर आलोचक रेड्डी जी सरकार पर प्रहार करते हुए मंत्रियों को संकट में डालते थे । निरर्थक भाषणों से उबाऊ शासन सभा की कार्यवाहियों में रेड्डी जी की व्यंग्योक्तियों और चुटकलों से जीवंतता आ जाती थी । उस समय के मुख्य मंत्री, पानगल राजा जो शसन सभा की बहसों में कुशल नहीं थे, अक्सर रेड्डी जी की फटकारों के शिकार होते थे ।

शासन सभा में बहुमत को हासिल करने केलिए सत्ताधारी पार्टी जो संदिग्ध तरीके अपना रही थी उस पर टिप्पणी करते हुए रेड्डी जी ने कहा, 'नियुक्तियाँ आसक्ति को और निराशाएँ अनासक्ति को जन्म देती हैं ।'

एक बार रेड्डी जी जब सरकार की नीतियों पर आड़े हाथ ले रहे थे मुख्य मंत्री ने अपनी जेब से एक कागज़ जिसे रेड्डी जी ने कभी अपने एक निजी कार्य के लिए उसके अनुग्रह चाहते हुए लिखा था, निकालकर उन्हें चुप कराना चाहा था । लेकिन कुशाग्र बुद्धिवाले रेड्डी जी धमकियों से कब चुप हो जाते ? उन्हों ने तुरंत ताना मारते हुए कहा कि इंग्लैंड में तो दो प्रेमी अनबन से जब अलग हो जाते हैं तब वे अपने पत्रों को वापस कर लेते हैं ।

इतना तो स्पष्ट है कि रेड्डी जी मुख्य मंत्री केलिए बगल मे छुरा जैसे तैयार हो गये । बजट प्रस्तावों पर तो उन की व्याख्याएँ तीखी रहती थीं । राज्य में शिक्षा केलिए निर्धारित अत्यल्प राशि से वे अधिक कृद्ध हुए । सरकार ने यह दलील दी थी कि असहयोग आंदोलन के कारण राजस्व की अपर्याप्त वसूली हुई है । घुमा फिरा कर इसी दलील से रेड्डी जी ने सरकार पर प्रहार किया । आप ने टिप्पणी की कि इस का मतलब यह है कि सरकार परोक्ष रूप से शासन चलाने में अपनी असमर्थता को और जनता के कर-मुक्त अभियान की जीत को स्वीकार कर रही है ।

सभी यह मानते थे कि रेड्डी जी के शासन सभा के शिक्षा संबंधी व्याख्यान अनुभव-जन्य एवं प्रेरणा-प्रद होते थे । उन की शैक्षिक पृष्टभूति के कारण लगता है कि उन का यह मानना स्वाभाविक ही था । मद्रास विश्वविद्यालय के सुधारों पर हुई बहसों में रेड्डी जी ने प्रमुख भूमिका निभायी है । उस विश्वविद्यालय के सुधारों केलिए गठित समिति के साथ आप का गहरा संबंध रहा ।

जब सरकार ने आंध्र केलिए अलग विश्वविद्यालय की स्थापना के विषय को बहस के लिए स्वीकार किया तो रेड्डी जी जैसे व्यक्ति का जो आंध्र जनता की आकांक्षाओं को वाणी देनेवाले रहे, खुश होना सहज ही था । उन्होंने सोचा कि भविष्य में अपनी निजी जातीय आकांक्षाओं की सिद्धि केलिए यह विश्वविद्यालय एक पूर्व पीठिका के रूप में काम कर सकेगा । लेकिन विश्वविद्यालय स्थापना से संबद्ध विधेयक में प्रस्तावित संशोधनों के कारण उन संभावित प्रयोजनों में होनेवाली कमियों को देखकर वे दुःखी हुए ।

14 डॉ. सी. आर. रेड्डी

1925 में जब आंध्र विश्वविद्यालय का बिल पारित हो कर विश्वविद्यालय स्थापना का कानून बना तब श्री रेड्डी जी विश्वविद्यालय के संस्थापक उप कुलपति नियुक्त किये गये । 'सही पद केलिए सही व्यक्ति का चयन हुआ' कह कर इन की नियुक्ति का सर्वत्र स्वागत किया गया । उस समय यह खबर भी उड़ी थी कि विरोधी दल के एक कण्टक समान उपद्रवी सदस्य से पिंड छूटने से मुख्य मंत्री बहुत खुश हुए । जनता के साथ समाचार पत्रों तक ने इस नियुक्ति को लेकर यह व्याख्या की थी कि,'राजनीति केलिए हानि और शिक्षा जगत केलिए लाभ ।' एक बेमुरौवत मसकरा ने तीर छोड़ा कि 'राजनीति के लिए लाभ और शिक्षा जगत केलिए हानि ।'

6

उपकुलपति

जब रामलिंगा रेड्डी जी ने उप कुलपति का पद भार सँभाला तब विश्व विद्यालय नाम मात्र का था । उस का अपना स्थान ही नहीं था । उन्होंने अपना कार्य बेजवाडा से, (जिसे वे 'ब्लेजवाडा', लपटों का मुकाम - कहना पसंद करते थे) शुरु किया । विश्वविद्यालय की पेचीदी नियम संहिता की संकल्पना से लेकर विश्वविद्यालय केलिए प्रतीक निर्धारण, विभिन्न विभागों का व्यवस्थीकरण और अध्यापक नियुक्ति आदि कार्यों तक आप को ही शुरु से करना पड़ा ।

विश्वविद्यालय केलिए स्थान का चयन बहुत दिनों तक उन केलिए सिर दर्द-सा था । अनंतपूर, विजयवाडा (पुराना नाम बेजवाडा) राजमंड्री, विशाखापट्टनम से ही नहीं आंध्र इलाके के लगभग सभी बड़े शहरों ने यह माँग पेश की कि अपने यहाँ विश्वविद्यालय की स्थपना की जाए । स्थन-चयन का यह संघर्ष कुछ समय तक बड़े तीव्र रूप में चलता रहा । रेड्डी जी का पसंदीदा स्थान 'वाल्टेर' की अधित्यका (अपलैण्ड्स) था । उच्च अधिकारियों ने भी उस स्थान की मंजूरी दी थी । अंततः उस स्थान का चयन अधिक समीचीन लगा । स्वास्थ्यकर मौसमवाला समुद्रतटीय उस स्थान से बढ़कर और कौन-सा स्थान विश्वविद्यालय केलिए अधिक उपयुक्त हो सकता था ?

पुराने विश्वविद्यालयों से भिन्न रीति से आंध्र विश्वविद्यालय में शिक्षण एवं शोध कार्य पर अधिक बल दिया गया । सम्बद्ध कालेजों के अतिरिक्त विश्वविद्यालय के भी अपने कालेजों की व्यवस्था की गयी थी । रेड्डी जी समाजिक विज्ञानों से संबंद्ध विद्वान होने पर भी आपने वैज्ञानिक दृष्टिकोण के आधर पर अन्य विभागों की स्थपना की योजना बनायी । परंपरा से चले आ रहे मौलिक विज्ञान शास्त्र विभागों के साथ वहाँ नये विषयों के विभाग जैसे गणितीय भौतिक शास्त्र, नाभिकीय भौतिक शास्त्र के साथ अन्य विभाग क्रमशः आगे स्थापित करने की आपने व्यवस्था की । कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय इंग्लैंड के ही नहीं, विश्व के अति प्राचीन दो विश्वविद्यालयों में से एक था । उस विश्वविद्यालय के स्नातक रेड्डी जी ने आंध्र विश्वविद्यालय को उस का प्रतिरूप बनाना नहीं चाहा । विश्व के प्राक-पश्चिम देशों के प्राचीन व अर्वाचीन विश्वविद्यालयों की सारी अच्छाइयों के सम्मिश्रण से विकासशील समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप वे इस विश्वविद्यालय का विकास करना चाहते थे।

तेलुगु भाषा व साहित्य के प्रति अप्रतिम अभिमान रखते हुए भी आप ने विश्वविद्यालय के स्तर पर तेलुगु को शिक्षा का माध्यम नहीं बनाया । वे विश्वविद्यालयों में शैक्षिक स्तर

को अधिक प्रमुखता देते थे और अपने विश्वविद्यालय को सार्वभौम स्वरूप प्रदान करना चाहते थे । आपने तेलुगु के साथ अन्य भारतीय भाषाओं केलिए भी अलग विभागों की स्थापना कर उन के अध्ययन को प्रोत्साहित अवश्य किया । तेलुगु के प्रति उन का अभिमान यहाँ तक ही सीमित था । 'धीरे धीरे आगे आगे' यह उन का लक्ष्य था ।

विश्वविद्यालय के प्रतीक-निर्धारण में रेड्डी जी ने विशेष रुचि दिखायी । इस में सूर्योदय से विकसित एवं दोनों तरफ़ दो सर्पों से परिवेष्टित एक बहुदल-पद्म एक वृत्त में दर्शाया गया है । इस पर तेलुगु लिपि में 'आंध्र विश्वकळा परिषत्तु' तथा संस्कृत में वैदिक सूक्ति 'तेजस्विनावधीतमस्तु' (हमारा अध्ययन हमें तेजस्वी बनाये) अंकित हैं । ज्ञान का प्रतीक सर्प है । लगता है कि पुराण गाथाओं में सर्पों के साथ अभिवर्णित आंध्रों के पूर्वज नागों के संबंधों को जताने केलिए यहाँ सर्प चित्रित हैं । आंध्र एवं नागों के संबंधों को लेकर जो सिद्धांत प्रचार में है, उस के प्रति रेड्डी जी का अधिक आकर्षण था । भारतीय कलाओं में तथा हिंदू तत्वमीमांसा से संबद्ध शिल्पों में पद्म अधिक दिखाई देता है । रेड्डी जी ने चित्तूर के अपने आवास का नाम भी "पद्म प्रभास" रखा है । इस से स्पष्ट है कि रेड्डी जी को पद्म से विशेष आकर्षण रहा है ।

अध्यापकों की नियुक्ति में आपने केवल उनकी योग्यता को ही प्राथमिकता दी । उम्मीदवारों की भाषा या प्रांत विशेष पर किसी प्रकार का ध्यान दिये बिना उच्च शैक्षिक योग्यता संपन्न उम्मीदवारों को ही चयन करने की आपने नीति अपनायी है । लोगों ने समझा था कि रेड्डी जी नियुक्तियों में आंध्र के साथ लिहाज़ करेंगे । लेकिन जब उन्हों ने ऐसा नहीं किया तो लोग उन की आलोचना करने लगे । उन्हों ने उस की परवाह नहीं, की क्यों कि उन की आलोचना उन के पक्षपात रहित कार्य केलिए परोक्ष रूप से एक प्रकार की प्रशंसा थी ।

योजनाबद्ध रूपसे विश्वविद्यालय को एक सुनिश्चित रूप देने में रेड्डी जी ने जो प्रयास किया, उतना और कोई व्यक्ति होता तो न किया होता । इस प्रयास में सभी कठिनाइयों का सामना करते हुए आपने हार-जीत को नैराश्य एवं प्रतितोष को समान रूप से स्वीकार किया । प्रथम पाँच वर्ष समाप्त होने तक आपने विश्वविद्यालय केलिए ऐसे बहुमूल्य कार्य किये जो उन की ख्याति के स्थायी प्रतीक बन गये ।

उपकुलपति के पद पर कार्य करते हुए एवं दलगत राजनीति से दूर रहते हुए भी रेड्डी जी गांधी जी के स्वतंत्रता आंदोलन के विचारों के हिमायती रहे तथा प्रगतिशील राष्ट्रीयतावादी के रूप में बने रहे । वे संविधानवादी होने के कारण 1930 में असहयोग आंदोलन के उग्रवादियों का पूर्णतः समर्थन नहीं कर सके । हाँ, असहयोग आंदोलन को दबाने केलिए सरकार ने जो दमनकारी कार्य अख्तियार किये उन का उन्हों ने समर्थन नहीं किया । सरकार के इस दमनकारी नीति के विरोध में आपने उपकुलपति पद से इस्तीफ़ा दिया । आपने विश्वाविद्यालय के अध्यक्ष एवं मद्रास राज्य के गवर्नर के नाम इस संदर्भ में जो जोशीला पत्र लिखा था वह एक मार्मिक व चिरस्मरणीय दस्तावेज है । प्रमुख पत्रकार श्री खासा सुब्बाराव ने इस पत्र को हमारे राष्ट्रीय साहित्य में एक महा काव्य की संज्ञा दी है । रेड्डी जी ने अपने दृष्टिकोण पत्र में यों प्रकट किया : "... चाहे हम किसी भी राजनीतिक

दल से संबंद्ध क्यों न हो हम सब भारतीयों का यह कर्तव्य है कि हम एक जुट हो कर इस दमन कांड के खिलाफ़ खुल कर विरोध करें । वे लोग भी जो कांग्रेस पार्टी से मतभेद रखते हैं, इस बात को स्वीकार करेंगे कि कांग्रेस देश में निर्मित एक बृहत प्रयोगशाला है जिस ने राष्ट्रीय चरित्र का निर्माण कर भारतीयों में संगठन कला का विकास किया, उन्हें अनुशासन सिखाया, जनता में देश भक्ति एवं अहिंसा वृत्ति को जगा कर देश में राष्ट्रीयता आंदोलन को उद्वेलित किया ।

मेरे भाई और बहनें जो त्याग कर रहे हैं, जो तकलीफ़ें वे झेल रहे हैं इन सबको देखते हुए मैं अपने पद पर बने रह नहीं सकता । इस मानसिक व्याथा के बीच मैं इस उप कुलपति पद को संतोष प्रद व सम्मान प्रद मान नहीं सकता ।"

1930-36 के समय रेड्डी विश्वविद्यालय से अलग रहे । उन के बाद आंध्र इलाके के ही उन के मित्र बड़े शिक्षविद डॉ. सर्वेपल्लि राधाकृष्णन् उप कुलपति पद पर नियुक्त हुए तो उनको अतीव संतोष हुआ । असहयोग आंदोलन में सक्रियता से सम्मिलित न होने पर भी रेड्डी जी चुप न बैठ सके । राजनीतिक दृष्टि से वह समय उन केलिए अवकाश का समय था । उन्हों ने उस समय 'गोल-मेज़ सम्मेलन', गांधी के आंदोलनों पर लेख लिखे, और व्याख्यान दिये । बाद में इन का संकलन करके " गोल मेज़ सम्मेलन पर लेख व व्याख्यान" नाम से प्रकाशित कराया । महात्मा जी की हृदयस्पर्शी प्रशस्ति करते हुए आप ने लिखा कि–" महात्मा जी लगता है कि इस बात पर ज्यादा ध्यान केंद्रित कर रहे हैं कि लंदन या दिल्ली से संविधान निर्माण करने के बजाय देश का निर्माण देश के भीतर से ही किया जाए । दूसरे लोग दावतें उड़ाते हैं तो गांधी जी उपवास रखते हैं । वे शोक संतप्त हैं क्यों कि हमारा देश शोकाकुल है ।"

बिना किसी हिचकिचाहट के जिस ने उपकुलपति पद से इस्तीफ़ा दिया उस का स्थानिक राजनीति में प्रवेश करने का उत्साह दिखाना आश्चर्य की बात लगती है । 1931 में वे चित्तूर जिला बोर्ड के अध्यक्ष के रूप में चुन लिये गये । वह भी किस्मत से लाटरी से चयन करने की प्रक्रिया अपनाने पर । बाद में वे शासन परिषद केलिए चुने गये । लेकिन अधिकांश कांग्रेसी सदस्यों के द्वारा शासन सभा का बहिष्कार करने से वे शासन सभा के माध्यम से कुछ न कर सके ।

1936 में डॉ. राधाकृष्णन् के आक्सफर्ड विश्वाविद्यालय में प्राच्य धर्म और नीतिशास्त्र विभाग में 'स्पाल्डिंग आचार्य' के नये पद स्वीकार कर वहाँ चले जाने से उप कुलपति का पद रिक्त हो गया था । उस रिक्त पद पर रेड्डी जी का चुना जाना सहज स्वाभाविक था । तब से लेकर, मैसूर विश्वाविद्यालय में प्रो चान्सलर पद स्वीकार करने हेतु 1949 में जब वाल्टेर छोड़ गये, तब तक वे उप कुलपति के पद पर निरंतर कार्य करते रहे । वाल्टेर छोड़ने से कुछ वर्ष पहले आंध्र विश्वविद्यालय ने उन्हें "डॉक्टर आफ लेटर्स" की मानद उपाधि प्रदान कर उन का सम्मान किया ।

उन्हें इस बात का संतोष था कि जब-तब विफलताएँ होने पर भी उन्हों ने अपने सुदीर्घ संपर्क-संबंधों के करण विश्वविद्यालय को अपनी अधिकांश इच्छाओं के अनुरूप सँवारा ।

शिक्षा-स्तर एवं विश्वविद्यालय की स्वायत्तता को परिरक्षित करते हुए सांस्कृतिक मूल्यों के उन्नयन के लिए भरसक प्रयास किया ।

मैसूर में वे कुछ ही समय तक रहे । उन का स्वास्थ्य बिगड़ने लगा । वे खुश थे कि वे दैनंदिक भारी जिम्मेदारीयों से विमुक्त हो पाये । एक साल से कुछ अधिक समय में जब वे मैसूर में थे, तब वे अपनी विद्वत्ता की परिपक्वता एवं अपने बहु आयामीय अनुभव का पूरा का पूरा लाभ मैसूर को पहुँचाया ।

1951 के प्रारंभिक दिनों में वे बीमार पड़ गये । मद्रास जाकर वे एक नर्सिंग होम में भर्ती हो गये । वहाँ उन का आपरेशन हुआ । 24 फ़रवरी 1951 को उन का देहांत हुआ ।

7

कवि

रामलिंगा रेड्डी जी ने बहुत ग्रंथ नहीं लिखे । लेकिन वे मौलिक प्रतिभा संपन्न रचनाकार थे । उन की गद्य रचनाएँ सीमित संख्या मे हैं तो पद्य रचनाएँ और सीमित हैं । रेड्डी जी जीवन भर शिक्षाविद, प्रशासक और राजनेता के रूप में अपने कार्यों में निरंतर व्यस्त रहते थे । हो सकता है कि इस कारण से उन्हें रचना कार्य केलिए समय न मिल पाया हो । कवि के रूप में मुख्य रूप से "मुसलम्म मरणमु" के कारण उनको प्रतिष्ठा मिली और शेष लघु पद्य कृतियों से भी कुछ हद तक उन की प्रतिष्ठा बढ़ी । ये सब कुल मिला कर छपाई में पचास पृष्ठों से अधिक नहीं होंगी । लेकिन परिणाम के बजाए अपने वैशिष्ट्य के कारण इन रचनाओं ने पाठकों को अपनी तरफ़ आकृष्ट किया ।

यह समझने में किसी को देर नहीं लगती कि रेड्डी जी प्राचीन साहित्यिक परंपराओं के साथ समकालीन संवेदनशीलनता से ओतप्रोत कवि हैं । वे कुछ हद तक आधुनिक हैं । लेकिन उन की आधुनिकता औरों से कुछ भिन्नता भी रखती हैं । निश्चय ही उन की कविता पारंपरिक कही जा सकती है, फिर भी उस की भावधारा आधुनिक है । छोटी आयु में ही उन में सृजनात्मक प्रतिभा जागृत हुई, लेकिन वह कदाचित पर्याप्त संख्या में रचनाओं के सृजन में वांछित समय तक कार्यरत नहीं रही । जीवन के निर्माणात्मक काल में तेलुगु काव्यों, विशेषकर आंध्र महाभारतम् और "पिंगळि सूरना" के प्रबंध काव्यों ने उन की साहित्यिक अभिरुचि पर निश्चयात्मक प्रभाव डाला । उन की रचनाओं में से उल्लेखनीय प्रारंभिक रचनाओं को देखने पर हमें यह स्पष्टतः विदित होगा कि वे इस प्रभाव से मुक्त न हुए ।

मुसलम्म मरणमु (1899)

रेड्डी जी ने मद्रास के क्रिश्चियन कॉलेज में पढ़ते समय उन्नीस साल की आयु में इस काव्य की रचना की । अन्य लोगों के प्रोत्साहन से आंध्र भाषाभिरंजिनी संघ द्वारा आयोजित प्रतियोगिता केलिए आपने यह काव्य लिखा । आंध्र भाषाभिरंजिनी संघ के संरक्षक समर्थ रंगय्या सेट्टी ने रेड्डी जी को प्रतियोगिता केलिए काव्य रचना करने को प्रेरित किया । रेड्डी जी ने काव्य रचना की, साथ ही उन्हों ने प्रतियोगिता में पुरस्कार भी जीता । इस काव्य में उनके सहपाठियों ने अधिक आसक्ति दिखायी तो एक वर्ष के बाद वह प्रकाशित किया गया ।

इस इतिवृत्तात्मक काव्य में सौ एक छंद हैं । इस की कथावस्तु ब्रिटिश प्रशासक एवं तेलुगु के विद्वान सी. पी. ब्राउन 'द्वारा लिखित पुस्तक ''अनंतपुरम् जिले का इतिहास'' से ली गयी है । कथा की घटना का स्थल अनंतपुरम् - शहर के नजदीक स्थित 'बुक्करायसमुद्रम्' नामक एक गाँव है । उस गाँव के तालाब के बाँध में दरारें पड़ने से संभावित भयंकर बाढ़ से भयभीत गाँववासी ग्राम देवता से प्रार्थना करते हैं कि वह उन्हें उस संकट से बचाएँ । तब उन्हें सूचना मिलती है कि यदि उस गाँव की महिला मुसलम्म आत्माहुति कर लेती है तो ग्राम देवता संतुष्ट होकर गाँव को बचाएगी । मुसलम्म दयालु स्वभाव की है । अनिंद्य एवं कुलीन भद्र महिला है । तुरंत वह गाँव की रक्षा केलिए आत्म-त्याग केलिए तैयार हो जाती है, और उधर तालाब के पानी का प्रकोप कम होने लगता है । उस तालाब का बाँध आज भी उस साध्वी के नाम पर 'मुसलम्म कट्टा' (बाँध) के नाम से जाना जाता है । इस घटना के साथ जुड़े हुए करुण रस से प्रभावित होकर रेड्डी जी ने इसे काव्य वस्तु के रूप में स्वीकार किया । लेकिन आप ने चरित्र चित्रण में, अन्य कलात्मक तत्वों की दृष्टि से मूल कथा में कुछ परिवर्तन भी किये ।

इस कथा को काव्य रूप देने में रेड्डी जी ने पारंपारिक साहित्यिक रीतियों को ही अपनाया । पूरा काव्य प्राचीन तेलुगु की प्रबंध काव्य शैली में लिखा गया है । काव्य में कहीं सुदीर्घ संस्कृत समास प्रयुक्त है तो और कुछ स्थानों पर ठेठ तेलुगु के प्रयोग । काव्य रचना में उत्पलमाला और चंपकमाला जैसे संस्कृत छंद, तेलुगु के देशी छंद जैसे सीसमु, कंदमु, आटवेलदि तथा तेटगीति प्रयुक्त हैं । इस में सारे प्रबंध काव्य लक्षण जैसे इष्टदेवता प्रार्थना, सुकवि स्तुति, कृति समर्पण, भरत वाक्य आदि हमें देखने को मिलते हैं । काव्य संप्रदाय के अनुसार अंत में प्रयुक्त तीन छंदों को छोड़ भी दें तो कुल 107 छंदो में विरचित इस काव्य में काव्य अवतारिका ही सोलह छंदो में है ।

वर्णनों के संदर्भ में देखते हैं तब भी यह काव्य प्रबंधशैली से भिन्न दिखाई नहीं देता । महान उग्र उत्तुंग तरंगों से युक्त उस गाँव के तालाब का वर्णन इस प्रकार किया गया है कि हमें बड़े सरोवर या महासमुद्र का स्मरण हो आता है । छंदों की पंक्तियाँ भी बड़े आडंबर पूर्ण हैं । जैसे

''चलदुत्तुंग महोग्रभंग पटलीसंघट्टनाराव, मु
ज्वल कूलाग्र नटत्तरंगरव, मंचन्मध्यभाग्भूमिभृ
त्कुल संपाति महोर्मिका निकर निर्घोषंबुनुं, गूडगा
नलरुन् घोर सरस्सु दिग्विदळन व्यापार पारीणमै ।।''

मोटे रूप से इस छंद का तात्पर्य यों है –

''आपस में टकरा रहीं उत्तुंग लहरों से, लय गति से
बाँध को लाँघनेवाली तरंगों से, तटाक के बीच के पहाड़
को प्रलयंकारी घोष से भिड़नेवाली हिलोरों से वह सरोवर ऐसा
दिखता था मानों दिशाओं को छिन्न-भिन्न करने के लिए तत्पर हो ।''

यदि हम यथार्थ को काव्य लक्षणों का एक अंग स्वीकार करते हैं तो तालाब कितना भी बड़ा क्यों न हो अतिशयोक्ति से भरे यह वर्णन पाठक को विश्वसनीय नहीं लगता । काव्य

की मुख्य पात्र मुसलम्म के गुणों के विश्लेषण करते हुए कवि ने जिन उपमा, रूपकों आदि का प्रयोग किया इनसे हमें कुछ स्थलों पर वह प्रबंध काव्य नायिका-सी लगती है ।

इस काव्य का समर्थन करते हुए पंडितों ने, मुख्य रूप से स्वर्गीय "आचार्य पिंगळि लक्ष्मीकांतम" ने जिन्हों ने इस काव्य की विस्तृत भूमिका लिखी है, यह अभिमत व्यक्त किया कि यह काव्य प्रमुखतः आधुनिक प्रणाली से संबंधित है । समग्र ग्रामीणों के कल्याण केलिए एक व्यक्ति के त्याग के परिदृश्य में काव्य वस्तु सामाजिक है और समकालीन परिस्थियों से इस का सीधा संबंध जुड़ता है । यह सर्व विदित है कि आंध्र का रायलसीमा प्रांत पाठार भूमि है जो अनिश्चित मौसम के कारण वर्षा के अभाव में कभी अकालग्रस्त हो जाता है तो कभी अतिवृष्टि के कारण बाढ़ों का शिकार हो जाता है । तेलुगु के प्राचीन काव्य पौराणिक, ऐतिहासिक व कल्पित आख्यानों को वस्तु के रूप में स्वीकार कर लिखे गये थे । किसी ने सामाजिक वस्तु को स्वीकार नहीं किया था ।

इस की दूसरी विशेषता है, कथा का दुःखांत होना । काव्य की नायिका "मुसलम्म" की आत्माहुति से काव्य समाप्त होता है । दुःखांत को अशुभ सूचक मानने से काव्य संप्रदायों के अनुसार यह स्वीकार्य नहीं है । काव्य संप्रदायों में उद्दिष्ट नियमों के अनुसार काव्य का अंत विवाह, या विजय आदि मंगल-प्रद कार्यो से होना चाहिए । (मंगलादीनि, मंगलमध्यानि, मंगलांतानि) रेड्डी जी का यह नूतन प्रयोग एक साहसिक प्रवर्तन एवं आधुनिक आंध्र कविता में नव परिवर्तन के संकेत के रूप में देखा जा सकता है ।

अतिशयोक्ति एवं कल्पनातीत उड़ानों से युक्त वर्णनों से अभिवर्णित प्रबंध नायिकाओं से भिन्न तरीके से यथार्थ एवं सहज ढंग से मुसलम्म का चरित्र-चित्रण प्रस्तुत करना रेड्डी की इस काव्य की तीसरी विशेषता है । पत्नी के रूप में उन की कर्तव्यपरायणता, प्रेम-निष्ठा मातृवत् सब के प्रति वात्सल्य आदि सद्गुणों से युक्त एक नारी के रूप में "मुसलम्म" का चित्र प्रस्तुत किया गया है । नखशिख से लेकर शरीर के मांसल सौंदर्य के चित्रण में अपनी कुशलता दिखानेवाले प्रबंध काव्य के कविगण की दृष्टि इस काव्य में पूर्णतः त्याग दी गयी है । यह इस काव्य के प्रधान रस; शांत रस के अनुरूप है । प्रबंध कवि का प्रीतिभाजन शृंगार रस इस काव्य में कहीं नहीं मिलता ।

समकालीन समीक्षकों के ये विचार सही हैं कि केवल काव्य वस्तु चयन और काव्य की परिसमाप्ति की प्रक्रिया से वास्तविक आधुनिकता किसी काव्य में नहीं आती । पौराणिक, ऐतिहासिक, राजनीतिक व सामाजिक किसी भी विषय में से कथावस्तु चयन करने की स्वतंत्रता कवि को रहती ही है, लेकिन किसी काव्य की कसौटी इस पर निर्भर रहती है कि उस ने इस के निर्वाह में कौनसा तरीका अपनाया है । रेड्डी जी ने इस का निर्वाह पूर्णतः आधुनिक रीति से नहीं किया । तब भी इस रचना को प्राचीन पारंपरिक काव्यों से भिन्न मानना उचित होगा । यह भिन्नता भी कुछ ऐसी नहीं है जो बिलकुल नया हो । दुःखांत पर विचार करें तो यह स्पष्ट है कि रेड्डी जी ने जिस कथा को अपने काव्य केलिए आधार बनाया है, उस मूल कथा में ही दुःखांत है, अतः यह कोई रेड्डी जी की नयी परिकल्पना नहीं है । अतः इस दृष्टि से भी इस काव्य में कोई ऐसी चीज़ नहीं है जिसे लेकर हम इसे विशेष महत्त्व दे सकें ।

116054
17.11.04

बीस साल की कम उम्र में किशोरावस्था में रचित यह काव्य उन के छंद-शास्त्र के उच्च कौशल और उन की भाषिक दक्षता का सबल प्रमाण प्रस्तुत करता है । तेलुगु के कवि-श्रेष्ठ 'तिक्कना' और 'पिंगळि सूरना' की काव्य रचना-तकनीक से रेड्डी जी अधिक प्रभावित थे। आवश्यकता के अनुसार अपनी प्रयोजन सिद्धि केलिए रेड्डी जी ने इन का बखूबी अनुकरण किया । जहाँ-तहाँ हमें 'नन्नया' और 'पोतना' की छायाएँ मिलाती हैं । अलावा इस के पद्य में कथा कहने के विशिष्ट सामर्थ्य के कारण वे पाठकों को अपनी तरफ़ आकृष्ट कर पाये । अपने युक्तियुक्त वाक् चातुर्य से दूसरों का अपनी ओर आकर्षित करने की निपुणता भी उन में थी ।

इस काव्य में " मुसलम्म" और उस के पति के बीच के संवाद को बड़ी सफ़ाई से चित्रित किया गया है । पत्नी कर्तव्यपरायणा है और संकल्प सिद्ध केलिए पक्की इरादा रखनेवाली भी । सच्चे प्रेमी; उस के पति अपनी पत्नी का निर्णय सुनकर दु:खी हो जाता है । दोनों के बीच स्नेह पूर्वक झड़पें होती हैं । भाव के लिए प्रति भाव व वाद केलिए प्रतिवाद की भाँति दोनों में वाद-विवाद चलता है । आखिरकार पत्नी की बात ही मानी जाती है । इसलिए नहीं कि वह स्त्री है और स्त्री की बातों का सम्मान होना चाहिए । कभी पहले पति ने उस से जोर देकर बार बार कहा था कि कोई चीज़ माँग लो । इस बात को पति को याद दिलाते हुए वह कहती है कि अब मेरी माँगने की बारी आ गयी है । बस यही मेरी माँग है कि मेरे निर्णय की स्वीकृति दीजिए । पति से अस्वीकृति को समाधान के रूप में स्वीकार करने को वह तैयार नहीं है । पति के मौन को अर्ध-स्वीकृति के रूप में न लेकर पूर्ण स्वीकृति के रूप में स्वीकार कर वह पवित्र कार्य निर्वहन करने रवाना हो जाती है ।

शुष्क व पारंपरिक काव्य अलंकारों का प्रयोग करने पर भी, आत्माहुति केलिए तत्पर हो कर निष्क्रमण केलिए तैयार हो रही " मुसलम्म" का चित्रण सटीक व मर्मस्पर्शी है । जैसे;

"...ऊरु हरिद्रपुजीर सांध्य रुचिगा नोप्पार

...

सरसी राज महाबिध कै चनिये विस्फारी भवन्मूर्तियै ।"

अर्थात :-

"उन्हों ने जो पीली साड़ी धारण की है वह संध्या के रंग में है । अमितानंद से प्रकाशित उन का मुख रक्तिम सूर्य-सा है । दु:ख से पीड़ित प्रजा समूह का रुदन पक्षियों के हाहाकार-सा है । ग्रामीण जनता की नजरों में महानता हासिल की हुई वह सागर-सा फैले हुए उस तालाब की ओर बढ़ चली । "

उस तालाब की ओर बढ़ रही " मुसलम्म" का वर्णन कवि ने यों प्रस्तुत किया,

" मंद मंद सौम्य एवं मनोहर ढंग से सरोवर की ओर बढ़ रही उन की चाल ऐसी लग रही है मानों अश्वचालक से लायी जा रही कोई बाल तुरंगी दूर से प्रवाहित नदी को देख कर उछल रही हो । "

तेलुगु के काव्यों में ऐसे उपमान कम मिलते हैं । कुछ लोगों की दृष्टि में यहाँ यह उपमान उपयुक्त नहीं है । रेड्डी जी ने यह कह कर कि, मैं ने इस उपमान को 'होमर' कवि कृत 'इलियड' से लिया, उन के प्रति आभार प्रकट किया ।

पानी में अंतर्धान हो रही नायिका के चित्रण में भी रेड्डी जी ने अपनी विशिष्ट काव्य प्रतिभा एवं कवि कल्पना स्रोतों का अच्छी तरह उपयोग किया । यह चित्रण बहुत ही आकर्षक बन पड़ा है ।

''कन्नेर्रबारिन खरकरोदयकाल
मेल्लन प्रिंगु जाबिल्लि यनग
ज्वलदग्नि शिखलपै नेल नव्वुतो बोवु
धात्री महादेवि तनय यनग
काल महास्वर्णकारकुंडग्नि लो
करगिंचु बंगारु कणिक यनग ''

अर्थात :

''लाल लाल आँखोंवाली प्रभात किरणों से लील गये चाँद के समान, लपटों की जिह्वाओं को फैलाये अग्नि शिखिरें में जा रही भूमि सुता सीता की भाँति, मनमोहक चाल से लाल अरविंद की पंक्तियों में प्रवेश कर रही हंसी - सी, काल रूपी महा स्वर्णकार द्वारा आग में तप रही स्वर्ण खण्डिका की भाँति उस ने धीरे धीरे पानी में प्रवेश किया ।''

पहले भी प्राचीन कवियों ने काव्यों में कुछ प्रयोग किये । यदि हम इसे भी एक नया प्रयोग मान कर इस की तारीफ़ करना चाहें तो हम पाएँगे कि यह भी प्राचीन काव्य संपद्रायों में से एक सीमित प्रयोग ही है । ''देवी देवताओं'', उन के संबंध में या राजा रानियों और उन से संबंधित महान कार्यों को ही नहीं, अपितु सामान्य स्त्री-पुरुषों की महान उपलब्धियों को भी काव्यों की कथावस्तु के रूप में स्वीकार किया जा सकता है''। इस तथ्य को सिद्ध करनेवालों में ये कोई प्रथम कवि भी नही हैं । फिर भी इस बात को पुनः दुहराने की आवश्यकता है । वह व्यक्ति जिस की आयु अभी बीस साल की भी नहीं हुई है, उस ने एक प्रौढ़ कवि के आत्मविश्वास को लिये प्रामाणिक काव्य की रचना प्रस्तुत की है, यह प्रशंसनीय बात है । इस काव्य में उन के उज्वल भविष्य के संकेत मिलते हैं । इस काव्य के वैशिष्ट्य को दूसरे शब्दों में कहें तो प्राचीन व अर्वाचीन गुणों के संधि काल से संबंधित काव्यों केलिए एक अनुपम उदाहरण है । इतना तो अवश्य कहा जा सकता है कि यह प्राचीन काव्य संप्रदायों पर नवीन युग के ईषत् प्रभावों को लिये निर्मित काव्य है । तेलुगु में आधुनिक काव्य आंदोलन केलिए कारणभूत क्रांतिकारी रचना केलिए हमें अन्यत्र अन्वेषण करना होगा ।

लघु कृतियाँ

विभिन्न संदर्भों में लिखित रामलिंगा रेड्डी की लघु कृतियों में मात्र चार हमें प्रकाशित रूप में उपलब्ध हैं । वे है 1. अर्थ शास्त्र ग्रंथ को समर्पित करते हुए लिखे गये छंद, (1911),

2. कवित्वतत्वविचारमु'' ग्रंथ की प्रारंभिक कविताएँ (1913), 3. ''अंपकालु'' (बिदाई) 1919 में गोद ली गयी बेटी विवाह के बाद जब बिदा हो रही थी, उस समय रचित कविताएँ और 4. आंध्र महाभारत की प्रशंसा में समीक्षात्मक व्याख्या प्रस्तुत करने की अपनी इच्छा जाहिर करते हुए भारत प्रशंसा (1919) के नाम से रचित छंद । ये सब कुल मिला कर मुद्रण में दस पृष्ठों से अधिक न होंगी ।

इन में से पहली रचना में दस कविताएँ हैं जिन्हें उन्होंने मैसूर में रहते समय अपनी तेलुगु पुस्तक ''भारत अर्थ शास्त्रमु'' कृति समर्पण के सिलसिले में लिखा । इस कृति की रचना भी आपने मैसूर में की । ये दस कविताएँ पारंपरिक तेलुगु छंदों; कंदमु, गीतमु, सीसमु, शार्दूलमु और चंपकमाला में लिखी गयी हैं । इस की भाषा ग्रांथिक (पुस्तकीय) होने पर भी बहुत हद तक सरल कही जा सकती है और ये कविताएँ सुलभ गाह्य हैं । रेड्डी जी ने कृति का समर्पण अपनी प्रेयसी की स्मृति को किया जिसका नाम उन्होंने कहीं उल्लेख नहीं किया । प्रेयसी से संबंधित होने के कारण ये वैयक्तिक महत्त्व की हैं । इन की शैली प्राचीन होने पर भी भावधारा रोमानी है । ये उन की प्रभावशाली भावोद्वेगों के सहज प्लवन को द्योतित करती हैं । अंत्य कविता में कवि अपनी प्रेयसी की पुकार पंचभूतों से आती सुनते हैं जिस में वे समाहित हो चुकी थीं । इस तरीके के भावप्रवण कृति समर्पण ने उन के विगत जीवन की धुँधली झलक देकर उन के जीवन के एक अध्याय पर हमेशा केलिए पर्दा गिरा दिया, क्यों कि उन्हों ने जीवन भर विवाह नहीं किया था ।

''कवित्वतत्वविचारमु' ग्रंथ की प्रारंभिक कविताओं से संबद्ध लघुकृति पहली कृति से भिन्न होने पर भी भाव प्रवणता से संबंधित ही है । मैसूर में रहते समय ही 1913 में रचित इन प्रारंभिक कविताओं में कुल छह छंद हैं । ये परिपाटी के अनुरूप पितृ भक्ति को प्रकट करनेवाली हैं । अपने ग्रंथ के माध्यम से पूज्य पिता सुब्रह्मण्य रेड्डी जी की सत्यनिष्ठा एवं विद्वत्ता की भूरि भूरि प्रशंसा करते हुए उन की स्मृति को स्थायी बनाने का प्रयास इन कविताओं में किया गया है ।

'अंपकालु' (बेटी की बिदाई) आठ छंदों की एक लघु कृति है जिसे रेड्डी जी ने 1919 में बेंगलूर में लिखा । इन कविताओं में भी मधुर भावों की ही प्रधानता है । ईलिया (चार्लेस लैम्ब) को ''एकांत सुख'' से छुटकारा पाने केलिए खयाली संतानें थीं तो रेड्डी जी को पितृ वात्सल्य रूपी आले के खाली स्थान को भरने केलिए उन के स्वर्गीय भाई की संतानें थीं । उन के भाई की बेटी संजंती कुमारी के प्रति उन के हृदय में अमित पितृ वात्सल्य रहता था । उन्हें वे असली पिता से भी अधिक प्यार करते थे । इन कविताओं के प्रत्येक छंद में आसन्न वियोग व्यथा सुनी जा सकती है । अश्रु धाराएँ देखी जा सकती हैं । उस के सुख में ही रेड्डी जी अपना सुख देखते थे । छंदों के भाव सहज स्वाभाविक हैं । इन में प्रयुक्त शब्द अति सरल हैं एवं भाषा दैनंदिन व्यवहार की भाषा से मेल खाती है ।

उन की लघु रचनाओं में चौथी '' महाभारत प्रशंसा'' में छह छंद हैं । तीसरी रचना के कुछ ही समय के बाद इसे रेड्डी जी ने लिखा । प्रियाति प्रिय बेटी के अलग होने से हुई शून्यता को अपने अतीव प्रिय ग्रंथ से भरने का प्रयत्न रेड्डी जी ने किया । प्राचीन तेलुगु काव्यों में से रेड्डी जी का अतीव प्रिय ग्रंथ आंध्र महाभारत था । उन का विचार था कि

कथावस्तु, शैली, भाव की गहराई, पात्रों के चरित्र चित्रण की निपुणता आदि की दृष्टि से विश्व में कोई ऐसी कृति नहीं है जो आंध्र महाभारत का समतुल्य हो सकती हो । आंध्र महाभारत की नवीन व्याख्या तेलुगु में प्रस्तुत करने की उन्हों ने अपनी आकांक्षा प्रकट की थी । लेकिन उन की आकांक्षा आकांक्षा के रूप में ही रह गयी थी ।

नवयामिनी (1936)

''मुसलम्म मरणमु'' के बाद रेड्डी जी का लिखा हुआ यह सुदीर्घ और महत्त्वाकांक्षा से युक्त काव्य है । गद्य में प्रस्तुत तीन पृष्ठों की प्रस्तावना के अतिरिक्त इस में कुल तीस एक छंद हैं । यह रेड्डी जी की प्रौढ़ावस्था में प्रणीत काव्य है । इस काव्य की रचना के समय रेड्डी जी की आयु पचास से अधिक थी । इसलिए उस में विषयगत विस्तृत ज्ञान और अनुभव की प्रौढ़ता दिखाई पड़ती है । कवि और समालोचक के रूप में तब तक आपने जो ख्याति अर्जित की थी उस का भी योगदान इसे मिला है ।

इस काव्य का दूसरा नाम, 'बिल्हण का अनुकरण' सटीक ही रखा गया । जैसा कि उन्हों ने सुदीर्घ प्रस्तावना में उल्लेख किया कि संस्कृत काव्य ''बिल्हणीयम्'' की मूल कथा कई दृष्टियों से रेड्डी जी को आपत्तिजनक लगी । अधिकांश भारतीय पाठकों को पता ही है कि इस का मूल आधार तरुण और रुपवान बिल्हण तथा कश्मीर राज कुमारी, सौंदर्यवती एवं उन की शिष्या ''यामिनी पूर्णतिलका'' के बीच का गुप्त प्रेम ही है । रेड्डी जी के विचार में यह कथा अनैतिक प्रभाव डालने के अतिरिक्त पाठकों में अनुचित रूप से विकृति भी पैदा करती है । अभियोग को चलाने केलिए सरकार द्वारा नियुक्त वकील के समान तर्क प्रस्तुत करते हुए रेड्डी जी एक कर्तव्य परायण पिता और एक राजा की बुद्धिमत्ता पर प्रश्न करते हैं कि राजा ने अपनी युवा बेटी को नवयुवक गुरु के पास कैसे छोड़ दिया ? राजा के अंत:पुर की स्त्री जनों को सदा निगरानी रखनेवाली अनुभवी दासी जनों से अलग करके उन्हें एकांत में छोड़ देना कहीं होता नहीं है । इस राजकुमारी के संदर्भ में भिन्न रीति क्यों अपनायी गयी ? इस प्रश्न को छोड़ भी दे तो यह विचारणीय प्रश्न है कि क्या उस छोटी उम्रवाले ''बिल्हण'' में एक गुरु के अनुरूप पांडित्य था ? या क्या हमें यह मानना है कि अपनी प्रतिभा के कारण वह सहज रुपेण विद्वान था ? हाँ, यदि वह वास्तव में विद्वान ही है, तो क्या एक विद्वान इतनी आसानी से ऐंद्रिय प्रेम के प्रलोभन का शिकार हो जाता है ? और राजकुमारी कुलीन राज वंशजाता, एक कन्या में जो पारिवारिक परंपराओं के अनुरूप अभिन्न गुण जैसे निग्रह और शालीनता होते हैं उन के कारण भी वह अपने को काबू में रख न पायी ?

कलात्मकता की कमी के अतिरिक्त उस में वर्णित दुराचरण के कारण भी बिल्हण के काव्य को वैशिष्ट्य रहित घोषित कर इस तेलुगु कवि ने इस कथा को अपनी पद्धति में दुबारा कहना शुरु किया । गुरु-शिष्या के परस्पर प्रेमानुराग पर संदेह प्रकट करते हुए भी रेड्डी जी ने उस की संभावना असंभावना पर प्रश्न चिन्ह नहीं लगाये ।

रेड्डी जी ने अपनी सोच के अनुसार ''यामिनी'' और ''बिल्हण''के स्वभाओं का चित्रण प्रस्तुत किया है कि जो ''बेर्नार्ड शा'' की कला निपुणता को स्मरण दिलाता है । बिल्हण ने यौवन-आरंभ की दशा को पार करने पर भी अभी वृद्धावस्थ में प्रवेश नहीं किया है ।

उसे अच्छाई - बुराइयों का सम्यक विवेक है । धर्म पथ से विचलित हो जाने पर भी अपने आप को सँभालने का सामर्थ्य उस में है । यामिनी युवती है, सुशीला है, सत्प्रवर्तन संपन्ना है । सौंदर्य, मार्दव, मनोबल व मनोनिग्रह रखने के साथ ही कोमल हृदयवाली मृदु भाषिणी व दृढ़-चित्ता भी है ।

इस काव्य में प्रेम निवेदन करने से पहले "बिल्हण" बड़ा संकोच करता है । उसे पता है कि वह क्या करने जा रहा है । लेकिन वह "यामिनी" के प्रति इस कदर प्रेमानुरक्त हो जाता है कि वह चाह कर भी इस प्रयत्न से अपने आप को विरक्त नहीं कर पाता । बिल्हण को जवाब देने से पहले "यामिनी" में भी बड़ा संघर्ष चलता है । प्रकाशवान एवं अश्रु पूरित "यामिनी" के नयनों को सूर्य-वरुण के मिलन के रूप मे चित्रित करते हैं । "यामिनी", "बिल्हण" की भार्सना नहीं करती । उस के सुगुणों का स्मरण उसे दिलाती है । उस का तिरस्कार न कर उस का संस्कार करती है । प्रकृतिस्थ होने केलिए उस की सहायती करती है । उस की बातों का सार यों है :

"हे महान ! आप का प्रेम क्षणिक व भ्रांति मात्र है । मुझे पता है कि वह सच्चा नहीं है । हे पवित्र मूर्ति ! मैं आप की प्रतिबिंब मात्र हूँ । कृद्ध न हो, आप की छाया में प्रवृत्त हुई इस लता को नेक मार्ग पर बढ़ने दें ।"

यामिनी का यह उद्बोध बिल्हण में परिवर्तन लाता है । वह समझ जाता है कि वह किस दूषित पथ पर जाना चाह रहा था । अपने आपको सुधार लेता है । मित्र के रूप में और पथप्रदर्शिका के रूप में यामिनी ने जो सहायता की उस केलिए कृतज्ञता ज्ञापित करता है ।

काव्य का इस तरह अंत करना नैतिकता की दृष्टि से संतोषप्रद लगता है । मानव स्वभाव के दुर्गुणों का परिष्कार कवि ने किया । स्त्री-पुरुष संबंधों में अचेतना व अवचेतना अवस्थाओं में उत्पन्न होनेवाली वक्रताओं को सुधारा । यह प्रश्न रह जाता है कि क्या दोनों पक्षों में उद्वेगपूरित वेदना व नैराश्य के अनुभव के बिना सुधार संभव है ? औचित्य की दृष्टि से कथा ने जो चीज़ प्राप्त की, लगता है कि उस ने उसे नाटकीय संघर्ष की प्रबलता में खो दिया । स्वाभाविक व प्राकृतिक आवेश बिल्हण से अलग हो जाने पर मूल बिल्हणीयम् का यह संदेहास्पद सुधार-सा लगता है । इस काव्य में रेड्डी जी की भाषा अपेक्षया सरल है, कविता रचना-रीति सुकर व सुलभ है । लेकिन उन के पहले के काव्यों के संदर्भ में इसे परखने पर इस की रचना जीवन-विहीन एवं निस्सार-सी लगती है । रेड्डी जी की युवावस्था के सर्जक के स्थान पर आयु के बढ़ने के साथ उपदेशक ने स्थान पा लिया ।

कवि के रूप में रामलिंगा रेड्डी जी ने 1899 से 1936, तक बहुत लंबा सफ़र तय नहीं किया । उन की शैली में थोड़ी बहुत प्रौढता आयी है । फिर भी उस में प्राचीन काव्य परंपरा व उपदेशात्मकता बनी रही । यदि यौवन में कल्पनाप्रवण हो कर शिखरों को छू न सके तो प्रौढ़ दशा में पूर्णज्ञान की गहराइयों की थाह भी न ले पाये । आधुनिकता से सदा परिवेष्ठित वातावरण में वे पद्य रचना शिल्पी के रूप में ही रह गये ।

8

आलोचक

एक दोषदर्शी परिभाषा के अनुसार विफल सर्जक समालोचक बन जाता है । लेकिन यह परिभाषा रामलिंगा रेड्डी जी पर लागू नहीं होती । सर्जक और समालोचक की क्षमताएँ जो प्रायः अलग नज़र आती हैं, वे रामलिंगा रेड्डी में एक साथ विद्यमान हैं । रेड्डी जी के व्यक्तित्व के दो गुण हैं; तार्किकता और विश्लेषणात्मकता । उन्हें समालोचक की भूमिका निभाने में इन दो अनुकूल गुणों ने उन का साथ दिया ।

उन का काव्य "मुसलम्म मरणमु " तेलगु कविता में प्राचीन से आधुनिकता के संक्रमण को संकेतित करता है तो उनका "कवित्वतत्वविचारमु" (कविता की प्रकृति की खोज) आधुनिक तेलगु आलोचना साहित्य में एक मील का पत्थर है । अंग्रेजी समालोचना साहित्य को सिडनी कृत "एपॉलजी फर पोयट्री", शेल्ली कृत "ए डिफ़ेस आफ़ पोयट्री" वर्डस्वर्थ की रचना" प्रिफ़ेस टु दि लिरिकल बेलेड्स", ओर कॉल्डरिज कृत, "बयोग्राफ़िया लिटरेरिया" आदि उत्तम ग्रंथों के साथ इस ग्रंथ की तुलना की जा सकती है । वास्तव में कुछ विद्वानों को इस में "अलगजेंडर पोप" की पुस्तक" एस्से आन क्रिटिसिज़म, "और मैथ्यू आरनाल्ड, कृत "एसेज इन क्रिटिसिज़म" के प्रभाव की छायाएँ दिखाई देती हैं ।

पुस्तककार में 1914 में प्रथम बार इस का प्रकाशन होने पर भी, वास्तव में इस लेखन की शुरूआत डेढ़ दशाब्धियों से पहले ही हुई थी । 1899 में मद्रास क्रिश्चियन कॉलेज के आंध्र भाषाभिरंजनी संघ के तत्वावधान में आयोजित बैठक में पठित अपने सुदीर्घ आलेख की रचना करते वक्त ही, रामलिंगा रेड्डी जी ने पिंगळि सूरना "कृत कळापूर्णोदयमु, प्रबंध काव्य को समीक्षात्मक दृष्टि से अध्ययन किया था । मित्र और सहपाठियों के प्रोत्साहन के फलस्वरुप रेड्डी जी ने इसे एक बार राजमंड्री में पढ़ा, और दो-तीन बार अन्यत्र भी प्रस्तुत किया । एक बार प्रख्यात विद्वान और व्याख्याकार "वेदम् वेंकटराय शास्त्री" जी ने मद्रास में एक सभा के अपने अध्यक्षीय भाषण में उस आलेख की समाश्वस्त एवं अत्युक्तिगत कमियों एवं व्याख्या से संबंधित अशुद्धियों की ओर रेड्डी जी का ध्यान आकृष्ट कराते हुऐ युवा समालोचक की अंतर्दृष्टि और साहस की प्रशंसा भी की थी । प्रत्येक व्यक्ति को उस लेख में असाधारण मौलिकता और रेड्डी जी के निश्चित उज्वल भविष्य दृग्गोचर हुऐं । "वेदम वेंकटराय शास्त्री "जैसे विद्वानों की आलोचना के परिप्रेक्ष्य में रेड्डी जी ने अपनी रचना में प्रतिस्थापित उग्र दृष्टिकोण को बदलना चाहा । लेकिन उन की स्थापना का मूल आधार बदला नहीं । इस रचना की पांडुलिपि का एक विचित्र इतिहास है । कुछ वर्षों के

बाद एक स्नेही प्रकाशक (मद्रास के वाविळ्ल एण्ड सन्ज़) ने उस आलेख को एक पुस्तिका के रुप में प्रकाशित करने का विचार प्रकट किया तो रेड्डी जी खुश हुए । रेड्डी जी पांडुलिपि में संशोधन कर उसे मुद्रण योग्य बनाना चाहते थे । कैम्ब्रिज में रहते समय और स्वदेश लौट आने के बाद कुछ वर्षों तक उनके मन में हमेशा यही ख्याल रहता था कि पांडुलिपि मुद्रण योग्य बना कर सौंपना है । जब वे मैसूर में थे तब उन्होंने इस कार्य को पूरा करने का प्रयत्न किया । लेकिन उन्हें उस आलेख की प्रति न मिला पायी । यह समझकर कि वह खो गयी, उस की आशा छोड़ दी । इसलिए उन्हें पिंगळि सूरना के काव्यों को पुनः नये सिरे से पढ़ कर नया निबंध लिखना पड़ा । यही निबंध 1914 में "कवित्वतत्वविचारमु" नाम से प्रकाश में आया । अपने पूर्व आलेख जिसे उन्होंने कॉलेज के दिनों में "कळापूर्णोदयमु" पर लिखा था, उसे केंद्र में रखकर उन्हों ने यह निबंध अवश्य लिखा था । लेकिन इस नयी रचना की परिधि विस्तृत हो गयी और जिल्द मोटी हो गयी । 1914 में आंध्र विश्वविद्यालय ने इस रचना का पुनर्मुद्रण किया जिस में पूर्व मुद्रण के लग भग सभी तत्व सुरक्षित हैं ।

"पिंगळि सूरना" के काव्यों की चर्चा में रेड्डी जी ने उन की पहली कृति "कळापूर्णोदयमु", जो उन की अतीव अभिमान कृति है के साथ उन की परवर्ती कृति "प्रभावती प्रद्युम्नमु" को भी सम्मिलित कर लिया । कविता में कल्पना का स्थान, चरित्रों के चित्रण की तकनीक, साहित्यिक कृतियों में संकलनत्रय की कलात्मकता आदि की चर्चा दो अध्यायों में ग्रंथ की पूर्व पूठिका के रूप में जोड़ दी गयी । इन अध्यायों में कवित्रय नन्नया, तिक्कना और एर्राप्रेगडा जिन्हों ने महाभारत का तेलुगु में अनुवाद किया था, एवं प्रबंध कवियों ने जो मार्ग अपनाये हैं, उन की तुलनात्मक समीक्षा प्रस्तुत की गयी । अंतिम अध्याय "प्रभावती प्रद्युम्नमु" से संबंधित है जिस में उन्हों ने कवि की प्रतिभा के ह्रास का उल्लेख करते हुए शृंगार चित्रण में अपनी दृष्टि में जो उपयुक्त या अनुपयुक्त है, इस की विवेचना की है ।

रेड्डी जी ने कविता में कल्पना प्रभवन को उच्च स्थान दिया है । कई दृष्टियों से परंपरावादी होने पर भी भावावेश में गहनता को तथा कल्पना में सुस्वस्थता को प्राथमिकता देने में वे अंग्रजी के रोमानी कवि "वर्डस्वर्थ ओर "कालरिज" में से एक को याद दिलाते हैं । यदि भाषाविषयक पांडित्य के प्रति वे सम्मान का भाव रखते हैं, तो यह सर्जनात्मकता के संदर्भ में नहीं । सहज स्वाभाविक तरीके से उन्होंने अपने दो टूक विचार व्यक्त किये ।

> "आधी रातों तक जाग कर व्याकरण, कोश और प्राचीन ग्रंथों के पारायण से काव्य रचना प्रक्रिया में विकास नहीं होता । तुम्हारे जीवनानुभव में न आनेवाले भावों को तुम दूसरों में कैसे लगा सकते हो ? संवेदन विहीन विद्वान से ऐहिक सुखों से संवेदित सामान्य मानव कई गुना बेहतर होता है । "

पांडित्य प्रदर्शन से इठालाते हुए घिसे पिटे शब्दावली से मंडित एवं रूढ़ आलंकारिक प्रयोगों से प्रमोदित मध्य कालीन प्रबंध कवियों से उन्हें एक प्रकार की चिढ़ थी । प्रबंध कवियों के द्वारा प्रयुक्त आलंकारिक प्रयोग, चंद्रमुखी, पद्म पत्राक्षी, बाहुलताएँ, शून्य मध्यम, हंस गमन, आदि वास्तविक जीवन से न लेकर कोश एवं अलंकार शास्त्र ग्रंथों से

गृहीत होने के कारण वे समय मिलते ही इन का उल्लेख कर प्रबंध कवियों का अपहास्य भी किया करते थे । कुछ कवियों ने तो भौगोलिक विभिन्नताओं, ऋतुओं के क्रम परिवर्तन को भी दृष्टि में न रखते हुए प्राचीन ग्रंथों से उन्हे यांत्रिक रूप से उल्था करके पुष्प जातियों की सूची जो प्रस्तुत की थी, उन का रेड्डी जी ने पर्दाफ़ाश किया । उन का कहना था कि बुद्धिमान पाठक को ये थका देते हैं ।

काव्य भाषा में अलंकारों का अपना स्थान हैं, लेकिन उपादेयता का ख्याल किये बिना उन के हर जगह प्रयोग पर रेड्डी जी ने तीव्र आपत्ति की । उन की दलील है कि अधिक वस्तुओं से उपमा उपमेय के अस्तित्व को ही खो देती है । पारंपारिक कवियों ने "वर्णन केलिए वर्णन" की दृष्टि से वर्णन को जो अधिक प्राथमिकता दी थी वह उन्हें पसंद न था । वर्णन की प्रक्रिया में प्राचुर्य वर्णनों को एक साधन के रूप में स्वीकार कर उनकी शरण में जाने की कवियों की सनक से उन्हें चिढ़ थी । यह परोक्ष रूप से इस बात को संकेतित करता है की भाषाओं में सत्ववाचनों की कमी रहती है जिसे कुछ भाषाविदों ने माना और जिसे कदाचित रेड्डी जी स्वीकार करते हैं ।

पात्रों के चरित्र चित्रगण के संदर्भ में रचनाकारों का पारंपारिक वर्गीकरण प्रक्रिया को वे आपत्ति जनक मानते हैं । उन के अभिमत में किसी भी पात्र को पूर्णतः उदात्त, अनुदात्त, सच्चरित्र, और दुश्चरित्र के रूप में चित्रित करना भले ही अकलात्मक न हो, अस्वाभाविक अवश्य है, क्यों कि कोई भी व्यक्ति सद्गुण, दुर्गुण, उदात्त गुण और अनुदात्त गुणों का सम्मिश्र रूप हो सकता है । मानव स्वभाव पूर्णतः अपवित्र या पवित्र नहीं होता । ये भिन्न स्वभाव व्यक्ति में विषयानुसार और संदर्भ के अनुसार कभी अति तीक्ष्ण रूप धारण कर और कभी कम तीक्ष्ण रूप धारण कर धूप-छाँव के समान मिलते-बिछड़ते रहते हैं । हमें यह भूलना नहीं चाहिए कि साहित्य जीवित व जीते-जागते व्यक्तियों से युक्त होना चाहिए न कि साँचों में ढले यांत्रिक मानवों से । चरित्र पूर्ण व सजीव होने चाहिए न कि निर्जीव । जीवन में परिवर्तन आधारभूत लक्षण है, अतः चरित्र भी परिवर्तनशील होने चाहिए ।

अपने स्वनिर्मित मानवों की कसौटी पर कस कर देखने पर रेड्डी जी को रामायण के चरित्रों की तुलना में महाभारत के चरित्र स्पष्ट व जीवंत लगे । युग युगोंसे मानव मात्र जिन आवेगों, पूर्वाग्रहों एवं कमजोरियों का शिकार होता आ रहा है, उन सबों से युक्त होने के कारण महाभारत के भीम, अर्जुन, द्रौपदी, दुर्योधन आदि चरित्र रेड्डी जी की दृष्टि में रामायण के प्रतिरूपी चरित्रों से अधिक स्वीकार्य हैं । राम, लक्ष्मण, सीता, हनुमान आदि चरित्र मूर्तिमान आदर्श चरित्र के रूप में और राक्षस एवं वानर आदि सुपरिचित नमूनों के रुप में दर्शन देते हैं । प्रबंध काव्यों के चरित्र भी प्राचीन काव्यों के शुष्क व नीरस चरित्रों के प्रतिरूप के रूप में कठपुतलियों से लगने के कारण इन से कोई संतोष नहीं मिला । हमारे चारों ओर के स्त्री-पुरुषों में दिखनेवाले गुणों का अभाव उन में होने के कारण उन में न हम विकास देख पाते हैं और न परिवर्तन ।

अन्य विषयों के संदर्भ में भी रेड्डी जी को प्रबंध कवियों की तुलना में आंध्र महाभारत के प्रणेता कवित्रय, (नन्नया, तिक्कना और एर्राप्रेगडा) के प्रति अधिक आदर भाव था । वास्तविकता यह है कि कवित्रय संस्कृत महाभारत का तेलुगु में अनुवाद करने के कार्य में

तत्पर थे, जब कि प्रबंध कवियों ने अपनी कल्पना से कुछ और चीज़ का सृजन करने का कार्य हाथ में लिया था । जिस पर तुर्रा यह कि प्रबंध कवियों की रचनाओं की अपेक्षा कवित्रय की रचना में कविता के मौलिक मूल्य अधिक हैं । इस का कारण यह है कि कवित्रय के कवि विद्वान ही नहीं अपितु उच्च श्रेणी के कवि भी थे । कवित्रय की कल्पना अधिक विशुद्ध एवं संयत थी । इसलिए उन के चरित्र जीवंत एवं विश्वसनीय और उन के वर्णन सहज वास्तविक लगते हैं । रेड्डी जी ने कवित्रय की इस विशेषता पर बल देकर प्रकट किया । कवित्रय ने जो किया उसे अनुवाद नहीं कहा जा सकता । वह भाषांतरण है, अनुसृजन है । अपने अंदर के सर्जनात्मक प्राबल्य के कारण वे अन्यथा नहीं कर सकते थे ।

प्रबंध कवियों से अधिक स्वतंत्रता की अपेक्षा करने की संभावना इसलिए थी कि उन्होंने अपने काव्यों केलिए कथाएँ अपनी स्वेच्छा से चुनी थीं । लेकिन वास्तविकता यह है कि रचनाएँ परंपरा से आबद्ध हैं और उनके चरित्र घिसे-पिटे साँचो में ढले-से हैं । इस कारण उन के काव्यों में मौलिक काव्य प्रतिभा और काव्यात्मक कल्पना की कमी है ।

व्यक्ति नाम व स्थान नामों को अलग करेंगे तो एक प्रबंध काव्य बहुत हद तक दूसरे काव्य-सा ही नज़र आता है । इन में पांडित्य प्रदर्शन की कोई कमी नहीं है । लेकिन उन में कोई व्यक्ति महान काव्य के लक्षणों को ढूँढ़ना चाहें तो उन के हाथ कुछ न लगेगा । और तो और उन में अच्छी कविता का भी अभाव है ।

काव्य रूढ़ियों के हिसाब से हर प्रबंध में हमें अष्टादश वर्णन और नवरस अवश्य मिलते हैं । प्रायः इन में कथा का अंश अत्यल्प रहता है । उस में भी विश्वसनीय कथांश और कम हैं । सामन्यतया कथा भी किसी एक राजकुमार और किसी एक राजकुमारी के बीच के प्रेम के संदर्भ में बुनी हुई रहती है । सहायक कथाएँ प्रेम संदेश की दूतिकाओं, नायक व नायिका के सखा व सखी जनों, नृत्यांगनाओं और पुरोहितों से संबंधित रहती हैं । कथा-कथन में और संवादों में रुढ़िबद्ध साधन जैसे, श्लेष, चंद्रोपालंभन, मन्मथोपालंभन आदि तेलुगु के प्रबंध काव्यों में अनिवार्य अंग के रूप में रहते हैं ।

इस का अर्थ यह नहीं है कि प्रबंध काव्यों में कोई उत्तम काव्य नहीं है । कम से कम छह प्रबंध काव्य उत्तम गुणों की कसौटी में खरे उतर सकते हैं । रेड्डी जी बड़ी खुशी से "अल्लसानि पेद्दना" कृत "मनुचरित्र" रामराज भूषण के "वसु चरित्र" और "चेमकूर वेंकट कवि" प्रणीत "विजयविलासमु" नामक तीन कृतियों को तेलुगु काव्य साहित्य में उच्च स्थान देते हैं । इस सूची में पिंगळि सूरना कृत "कळापूर्णोदयमु", को जो रेड्डी जी का विशेष प्रशंसा-पत्र भी है, और कुछ हद तक "प्रभावती प्रद्युम्नमु" को भी सम्मिलित कर सकते हैं ।

सामान्य जन जीवन, उन के सुख दुःख, संघर्ष व वेदनाओं, आशाओं और आकांक्षाओं को वे काव्य प्रतिबिंबित नहीं करते । इस वज़ह से उत्तम कहलानेवाले काव्य भी उन की पैनी समीक्षा की दृष्टि से बचे नहीं है । उन का कहना है कि वे काव्य समाज के उच्च वर्ग के लोगों के साहित्य का प्रतिनिधित्व करते हैं । तत्कालीन यूरोपीय भाषाओं के साहित्य से हमारा साहित्य इस दृष्टि से भिन्न प्रतीत होता है । यूरोपीय साहित्य ने राज वंशजों की

प्रशंसा करने पर भी गरीब किसान, साधारण सैनिक, सामान्य दुकानदार, आंडबर हीन सह-नागरिक आदि का विस्मरण नहीं किया । उन दिनों आंध्र में जन जीवन और साहित्य में बड़ा अंतर होता था । इस से सामाजिक चेतना का ह्रास होने के साथ साहित्य यथार्थ जीवन रस के अभाव में चेतना विहीन भी बन गया । इस लिए घात-प्रतिघात से संबद्ध नाटक या संचलन-प्रद दुःखांत रचनाएँ हमारे यहाँ नहीं आ पाये ।

कई कारणों से "कळापूर्णोदयमु" ने रेड्डी जी को आकर्षित किया । उन में से कवि की कल्पना शक्ति, औचित्यपूर्ण वर्णन, सुस्पष्ट चरित्र चित्रण के साथ कवि के संदर्भोचित छंदोंके चयन की निपुणता आदि उल्लेखनीय है । "कळापूर्णोदयम्" की कथा पौराणिक एवं काल्पनिक अंशों का संमिश्रण है । कवि ने आवश्यकता के अनुसार कल्पनाओं को इस में जोड़ दिया । उपाख्यानों के क्रमिक नियोजन में चरित्रों के आपसी मिलन में सोद्देश्य जटिलता उत्पन्न करायी गयी है । "रंभा" और "नलकूबर", "कल भाषिणी " एवं " मणिकंथर" और अभिनव कौमुदी/मधुर लालसा एवं "कला प्रपूर्ण" को प्रेम युगलों के रूप में रूपायित करने में ताने-बाने का विभिन्न प्रकार से काम में लाया गया । इन के साथ विवाहित दंपति, "सरस्वती" एवं "चतुर्मुख" और "सुगात्र" एवं "शालीन" के प्रेम-प्रसंग भी इस में है । इन युगलों से संबंधित प्रेम उपाख्यान इस तरह नियोजि हैं कि संपूर्ण कथा में वैशिष्ट्य आ गया है । सुगात्री एवं शालीन का वन्य प्रांतों में उच्छल प्रेम व्यापार, उन का आमोद प्रमोद आदि "शेक्सपीयर" के नाटक "एज-यू-लाइक इट" के "रोज लिंडा" एवं "आरलाण्डों" जैसे वन्य चरित्रों का स्मरण दिलाते हैं । रंभा एवं "नलकूबरों" की पहचान में जो हड़बड़ी हो जाती है और उससे जो दिलचस्प स्थिति उत्पन्न हो जाती है, ये सब "दी कामेडी ऑफ एरर्स" की घटनाओं को याद दिलाते हैं ।

रेड्डी जी ने इस बात पर आश्चर्य प्रकट किया कि "शेक्सपीयर" और "सूरना " लगभग समकालीन रहे, एक दूसरे के अस्तित्व से बेखबर । जब यह तथ्य हमारे सामने आता है तो हमें लगता है कि कितना विचित्र सादृश्य है ।

"सूरना" के परवर्ती काव्य "प्रभावती प्रद्युम्नमु" में विस्तृत रूप में प्रयुक्त तेलगु की कहावतों एवं लोकोक्तियों पर, अभिमत प्रकट करते हुए रेड्डी जी ने कहा कि ये कवि की शैली की परिपक्वता, मानव स्वभाव के विकास की संपन्नता का बोध कराती हैं । लेकिन साथ में कविता केलिए आवश्यक भावनात्मक निपुणता की कमी भी उन्हें दिखाई दी । कवि श्लेष एवं बहुलार्थ (दो या दो से अधिक अर्थ देनेवाले) के प्रयोगों को काव्य में कम तो कर सके लेकिन अत्यंत जटिल कल्पनाओं का आश्रय लेने से अपने आप को बचा न सके ।

काव्य में कथा की घटनाओं को कालक्रम से नियोजित करने की अपेक्षा उन्हें तार्किक क्रम में रखने की विधि को रेड्डी जी अधिक पसंद करते हैं । वे समझते हैं कि यह विधि कथा की कलात्मकता को उजागर करने में अधिक सहायक होती है । पात्रों के चरित्रों के विकास क्रम के बारे में भी रेड्डी जी के कुछ सुस्पष्ट विचार हैं । कवि की दृष्टि को आकर्षित करने के उद्देश से वे उन्हे बारंबार व्यक्त करते हैं ।

> "किसी पदार्थ का जातिगत या वर्गगत वर्णन प्रस्तुत करना कोशकार का काम है । वैयक्तिक वैशिष्ट्यगत चित्र उत्पन्न करना कवि कर्म है । और जो

यह नहीं कर सकता वह भले ही विद्वान हो पर कवि नहीं हो सकता । कवि कर्म का संबंध कवि द्वारा अपने मानस पर सर्जित रूप को शब्दों के माध्यम से पाठकों के अनुभव में लाने के सामर्थ्य से हैं । एक नदी का वर्णन अन्यों से अभिन्न रूप से वर्णित करना कला नहीं है । उस नदी की अपनी अद्वितीयता होनी चाहिए । सरोवर और प्रकृति की अन्य रचनाओं के संबंध में यही लागू होता है । मानव चरित्रों के चित्रण में इस दृष्टिकोण का विस्मरण कभी न करना चाहिए ।''

इतने वर्षों के बीत जाने के बाद (इन के लिखने के लगभग नौ दशाब्दियों के बाद) हो सकता है कि ये सामान्य टिप्पणियाँ आधुनिक साहित्य एवं पाश्चात्य समालोचना सिद्धांतों के आधारभूत तत्वों से परिचित व्यक्तियों को सार रहित लगे । किंतु उल्लेखनीय है कि बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में ये टिप्पणियाँ पाश्चात्य प्रभंजन के कारण बेचैन ओजस्विता को लिये प्रशांत तेलुगु साहित्य क्षेत्र में झंकृत हुईं । परंपरावादियों ने तब इन्हें क्रांतिकारी चक्र समझा था । प्राचीन अलंकार शास्त्र ग्रंथों से अध्यायों एवं छंदो को उद्धरणों के रूप में प्रस्तुत करते हुए तेलुगु के विद्वानों ने रेड्डी जी की दलीलों का खंडन करने के प्रयास किये । ''कवित्वतत्वविचारमु'' के सिद्धांतों का विस्तार से खंडन करने के उद्देश्य से समग्र रूप से पुस्तकें प्रकाश में आने लगीं । लेकिन आधुनिकों ने ''कवित्वतत्वविचारमु'' का साहित्यिक समीक्षा में एक नूतन प्रामाणिक ग्रंथ के रूप में स्वागत किया । वास्तव में इस का प्रमुख कारण रेड्डी जी के द्वारा काव्य समीक्षा के महत्त्व को कविता के बाह्य रूप से हटा कर उस के आंतरिक जीवन के साथ जोड़ना, भाषा शास्त्र से हटाकर दर्शन शास्त्र के साथ जोड़ना तथा कविता शरीर से उसे कविता की आत्मा में स्थानांतरित करना ही था ।

आलोचना के क्षेत्र में प्राचीन साहित्य के कुछ चरित्रों को पुनः व्याख्यायित करने में, कुछ कवि एवं कुछ काव्यों के पुनर्मूल्यांकन में रेड्डी जी का उल्लेखनीय योगदान है । यदि आंध्र महाभारत उन की अत्यंत प्रिय रचना है तो उस में द्रौपदी उन की प्रीति भाजन चरित्र हैं । उन की पुस्तक पंचमी (पाँच निबंधों का संकलन) में संकलित पाँच निबंधों में से एक में सीता और द्रौपदी के चरित्रों का गंभीर तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत है । युग युगों से इस देश में प्रवर्तित आदर्श स्त्री मूर्ति का प्रतिरूप है सीता । सीता की विनम्रता, धीरता, सौम्यता और कष्ट-सहिष्णुता आदि श्रेष्ठ गुणों के कारण सीता के प्रति रेड्डी जी को समादर भाव था । लेकिन द्रौपदी अपनी साहस ऊर्जस्विता एवं सक्रियता आदि गुणों से रेड्डी जी के पुरूष हृदय को भा गयी । उन्हीं के शब्दों में --

''द्रौपदी के समान सीता ने भी विश्व मानवता के हृदयों को जीता है । लेकिन वह घर का प्रकाश ही रही विश्व ज्योति न बन पायी और न सार्वजनिक सभाओं का आकर्षण ।

वे ऐसी गृहिणी हैं जिन्हें न ऐसे विषयों में कभी रुचि रही और प्रवृत्ति । वाग्युद्ध, सार्वजनिक संघर्ष और संघर्षों से मुकाबला करने के लिए वे काबिल नहीं हैं । उनका स्वभाव सुमधुर है, कुटु नहीं है ...।

...और द्रौपदी ! द्रौपदी ऐसी हैं जिन की तुलना अपनी से कर आधुनिक अमरीका की महिला-नेत्रियाँ भी यह महसूस करने लग जाएँगी कि कहीं वे गुलाम तो नहीं हैं । उन की स्वतंत्र प्रवृत्ति के मूल आधार हैं उन की बुद्धिमत्ता, विवेकशीलता, सर्वज्ञता, राजनीतिक विदग्धता, साहस, उन्नत स्वभाव और वैयक्तिक आकर्षण । यदि वे अपने पतियों को डाँट-फटकरती भी हैं तो भी पति लोग या अन्य कोई उन्हें दोष न देते, वे अद्वितीया एवं दोषरहिता हैं । उन जैसी महिलाएँ स्वजनों की ही नहीं अपितु सभी की दुलारी हो जाती हैं । इतना ही नहीं वे सभी केलिए मान्य व पूजनीय होती हैं । ... इन से विश्व परिपूर्ण लगता हैं ।''

बहुत समय से स्त्रियों को सौंदर्य राशि एवं अबलाओं के रूप में देखते आ रहे कुछ पुरुषों को उन के शौर्य-साहस आघात पहुँचा सकता है । लेकिन रेड्डी जी केलिए वे प्रेम करुणा, आग्रह, भय आदि गुण, स्त्री सुलभ मनोहारिता से लेकर पुरुषोचित ओज तक के गुणों का सम्मिश्रण है । वास्तव में द्रौपदी उन की विशद भावना की परिपूर्ण स्त्री की प्रतिकृति हैं ।

द्रौपदी के बाद रेड्डी जी के प्रीतिभाजक चरित्र भीम हैं जो निस्संकोच द्रौपदी का साथ देने के अलावा अपने शौर्य पराक्रमों से कमजोर लोगों की सहायता करते हैं । आम राय में हो सकता है कि दुर्योधन महाभारत के दुष्टचतुष्टय में से एक हो । लेकिन रेड्डी जी की दृष्टि में वे रंगमंच के सामान्य खलनायक न होकर गौरवप्रद पुरुषत्व संपन्न दुःखांत नायक है । शेक्सपीयर के दुःखांत नायकों की भाँति इन में भी सद्गुण शीलों के भीतर चुनौतियों का सामना करने के लिए उत्प्रेरक घातक कमजोरियाँ जैसे, घमंड, ईर्ष्या आदि विद्यमान हैं।

प्राचीन तेलुगु काव्यों मे आंध्र महाभारत के बाद द्विपदों (दो पंक्तियों का एक तेलुगु छंद) में रचित रंगनाथ रामायण ने रेड्डी जी को अधिक आकर्षित किया । विश्वास किया जाता है कि इस के रचयिता रंगनाथ हैं । रेड्डी जी ने जन सामान्य के विश्वास पर भरोसा नहीं किया और न उन्हों ने पारंपारिक सिद्धांत को स्वीकार किया । इस संदर्भ में अपने अभिप्राय को आपने यों प्रकट किया :

> ''1919 में नेल्लूर शहर में भाषण देते हुए मैंने रंगनाथ को मनगढंत व्यक्ति कहकर अस्वीकार किया था । ''रंगनाथ '' व्यक्ति नाम है, या स्थान नाम या देवता नाम है, यह कोई निश्चित रूप से कह नहीं सकता । रंगनाथ रामायण में विद्यमान आंतरिक आधारों के खंडन में भी किसी ने कोई प्रमाण प्रस्तुत नहीं किये । इसलिए 'गोन बुद्धा रेड्डी' के कर्तृत्व को अस्वीकार करना न्याय संगत नहीं लगता ।''

रामलिंगा रेड्डी के अनुसार इस ग्रंथ के कर्तृत्व का संबंध काकतीय राजाओं के सामंत राजवंश से संबद्ध 13 वीं सदी का राजा गोन बुद्धा रेड्डी से जोड़ा जा सकता है । बुद्धा रेड्डी का जन्म ई. सन्. 1210 में हुआ था । पिता ''विठ्ठलक्ष्मानाथ'' के निर्देश के अनुसार उन्हों ने 1240 में इस ग्रंथ का प्रणयन किया । ग्रंथ के आंतरिक आधार एवं शिलालेखों के

आधारों के बल पर रेड्डी जी ने यह निष्कर्ष निकाला था । जहाँ तक रंगनाथ नाम का सवाल है, इस संबंध में उपलब्ध दो स्पष्टीकरणों में से एक को आप ने स्वीकार किया ।

कृतिकार बुद्ध भूपति ने अपने पिता विट्ठल भूपति जिन का नामकरण भगवान पांडुरंग के नाम पर किया गया था, को अपनी कृति को समर्पित करने के कारण उस भागवान के नाम पर इस कृति को "रंगनाथ रामायण" नाम संक्रमित हुआ होगा । काकिनाडा के आंध्र साहित्य परिषद के प्रमुख विद्वान व साहित्यकार "जयंती रामाय्य पंतुलु" जी भी इसी मत को स्वीकार करते हैं ।

दूसरा स्पष्टीकरण यों है :

तंजावूर के "शरभोजी" महाराज के ग्रंथालय में इस तेलुगु रामायण की तेरह ताड़पत्र की प्रतियाँ हैं । इन में से कुछ प्रतियों में रंगनाथ का नाम और कुछ में बुद्ध भूपाल का नाम अंकित है । कुछ प्रतियों में छठे अध्याय (षट कांड) के अंतिम छंदों के आधार पर रामलिंगा रेड्डी ने यह निष्कर्ष निकाला कि "रंगय्या" नामक एक राम भक्त के आदेश के अनुसार "कृप्पय मंत्री" नामक एक ब्राह्मण लिपिक ने (जो महाराष्ट्र शासक शहाजी (1684-1712) के ग्रंथालय में कार्यरत थे) इन प्रतियों को तैयार कर रखा था । इस से रेड्डी जी ने इस का यह तात्पर्य निकाला कि कृतिकर्ता गोन बुद्धा रेड्डी के होने पर भी प्रतियों के तैयार करवानेवाले "रंगय्या" के नाम के आधार पर इस ग्रंथ को रंगनाथ रामायण का नाम संक्रमित हुआ होगा । गोन बुद्धा रेड्डी को वे निश्चित रूप से इस ग्रंथ के लेखक मानते हैं और इस की अभिन्नता के प्रमाणीकरण के लिए वे बाजी लगाने केलिए भी तैयार थे । रेड्डी जी की इस स्थापना को शोध कर्ताओं में सार्वत्रिक स्वीकृति न मिल पायी । आज तक अंतिम रूप से यह निर्धारित न हो पाया है कि इस ग्रंथ के रचयिता कौन हैं । लेकिन रचना सौंदर्य और लेखक की मौलिक प्रतिभा को लेकर कोई मतभेद नहीं है । "पि. चेंचय्या" कृत आंध्र साहित्य चरित्र ग्रंथ की पीठिका में सन् 1928 में डॉ. रेड्डी ने रंगनाथ रामायण के बारे में जो विचार व्यक्त किये हैं, उन को अधिकांश पाठक हृदय से स्वीकार करते हैं ।

"आंध्र में कई वाल्मीकीय रामायणें मिली हैं । लेकिन गोन बुद्ध रेड्डी की एक ही रामायण मिली है । लोक में प्रचलित सारी रामायण गाथाओं को वाल्मिक की रचना में समाहित करने में जो कौशल और प्रज्ञा कवि ने दर्शायी सो अद्‌भुत है । अपनी तेलुगु मेधा की प्रतिभा से आप ने रामायण का रूपांतर प्रस्तुत किया । इस कवि की रामायण के समान बहुजन समादृत और काव्य वैभव से संपुष्ट और कोई रामायण तेलुगु भाषा में नहीं है । इस से जो मानसिक आनंद मिलता है वह गहरा है और हृदय के गह्वरों को छूनेवाला है ।"

उन्हों ने इसे अनुवाद से श्रेष्ठ कहा । संभवतः यह कई स्थानों पर परासृजन है । इस रामायण के मौलिक तत्वों का उल्लेख करते हुए रेड्डी जी ने निम्न लिखित सूची प्रस्तुत की है :

1. अरण्य कांड में लक्ष्मण के द्वारा बाँस की झुरमुटों के राक्षस का वध करना ।

2. रावण को नेक सलाह देनेवाली उन की माता एवं उन के विज्ञ सलाहकारों का समावेश

3. गहन करुणरस स्फुरित सुलोचना का प्रसंग

4. हनुमान के द्वारा संजीवनी को ढूँढ़ने से संबंधित घटना

5. रावण द्वारा पाताल यज्ञ

6. रामेश्वरम् से संबंद्ध गाथाएँ

चरित्रों को देदीप्यमान रूप में चित्रित करते हुए उन्हें नवीन रूप देने में रचयिता की कला निपुणता की प्रशंसा करते हुए रेड्डी जी ने रावण चरित्र के संबंध में अपना अभिमत निम्न लिखित प्रकार से प्रकट किया :

''रावण एक राक्षस होने के नाते ही नहीं, अपितु वह नैतिक रूप से भी एक समस्या बन गया था । सीता के अपहरण में उस का उद्देश्य क्या था ? आम तौर पर यह कहा जाता है कि प्रतिशोध की वांछा और प्रतिशोध से उत्पन्न ऐद्रिंक सुखानुभूति । लेकिन इस तीव्र वांछा से पूरित उस के अंध तमस के किसी रहस्यमय कोने में टिमटिमाते हुए उस के आध्यात्मिक उद्देश्य की ओर गोन बुद्धा रेड्डी हमारा ध्यान आकृष्ट करते हैं । रावण सोद्देश्य राम से युद्ध के लिए सन्नद्ध होता है जिस से कि वह भगवान राम के हाथों से मृत्यु पाकर मोक्ष की सिद्धि प्राप्त कर सके, तथा अपने पार्थिव शरीर त्याग कर देव सन्निधि को प्राप्त कर सके ...''

विभीषण के प्रति कुंभकर्ण के अंतिम अभिभाषण को अति अद्भुत एवं करुण रस पूरित घोषित करते हुए रेड्डी जी ने आखिर में कहा कि –

''कुल मिलाकर गोन बुद्धा रेड्डी का महत्त्व वाल्मीकि के अनुवाद के रूप से बढ़कर इस में है कि उन्हों ने आंध्र की ग्रामीण जनता की अद्भुत कल्पनाओं को इस के माध्यम से संप्रेषित किया ।''

पश्चिम आंध्र प्रांत की साहित्यिक निधियों में अग्रणी के रूप में रंगनाथ रामायण को रेड्डी जी स्वीकार करते हैं । लोक में प्रचलित वीर गाथाएँ, जैसे पल्नाटि वीर चरित्र, ''काटम राजु कथा'', अनेक यक्षगान, द्विपद, वीरशैव साहित्य की अधिकांश कृतियों को रेड्डी जी ने इस निधि के अंग माना है । संतों की अंतर्दृष्टि, समाजिक उद्धार के महत उत्साह से संपोषित कवि-महायोगी वेमना और पोतुलूरि वीरब्रह्मम् ये दोनों इसी इलाके के हैं । लोक प्रिय साहित्य (देशी साहित्य) का रूप जन समूह के प्रोत्साहन से पश्चिम आंध्र के रायलसीमा एवं तेलंगणा जिलों में विकसित हुआ तो शिक्षित उच्च वर्ग के व्यक्तियों द्वारा आकर्षित पांडित्य पूर्ण साहित्य (मार्ग साहित्य) का रूप प्राच्यांध्र प्रांत में तटवर्ती जिलों में विकसित हुआ । साहित्य के विकास में इस तरह के अंतर के कारणों को ढूँढ़ते हुए रेड्डी जी दोनों इलाकों की सामाजिक सांस्कृतिक पृष्ठभूमि तक पहूँच जाते हैं ।

''मैं समझता हूँ कि भेद संभवतः इस कारण से है कि समुद्र तटीय प्रांत स्वभावतया और अधिक समग्र रूप से आर्य संस्कृति को पचा पाया था जब कि पश्चिमांध्र जो अगम्य इलाका है बहुत हद तक द्राविड लक्षणों एवं व्यक्तित्व को बनाये रखा था । यह भेद दोनों इलाकों के साहित्य में भी प्रतिबिंबित हुआ । कुछ समय पहले तक अर्थात् आधुनिक सभ्यता

ने जनता के मन और उन के दृष्टिकोण पर अपना प्रभाव डालना शुरू नहीं किया था, समुद्र तटीय प्रांत का साहित्य सारा मोटे रूप से संस्कृत से अनुवाद और अनुकरण पर आधारित साहित्य था । पश्चिमांध्र प्रांत का साहित्य बहुत हद तक देशीय तत्व एवं मुखर व्यक्तित्व से महका था ।"

साहित्यिक हिरसात के विश्लेषण में जाने अनजाने में अगर रेड्डी जी में प्रांतीयता का अभिमान ने स्थान बना लिया तो यह स्वाभाविक ही कहा जा सकता है । जैसे कि उन्हों ने अन्यत्र उल्लेख किया था कि जब वे इंग्लैंड में थे तब वहाँ के एसेक्स, ससेक्स, मिडिल सेक्स, वारविक शैर, ग्लस्टर शैर आदि इलाकों के लोग अपने इलाकों के प्रति ऐसे ही विचार रखते थे जो वहाँ स्वाभाविक माना जाता था । व्यक्तियों के संदर्भ में या कुछ और विषयों के संदर्भ में जब तक ये विचार विस्तृत राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य को हानि नहीं पहुँचाते पूर्णतः निरापद हैं । रेड्डी जी की साहित्यिक और ऐतिहासिक उपपत्तियों में इस प्रकार के दृष्टिकोण का प्रभाव नहीं है । प्रमाण के रूप में उन्हों ने तत्कालीन आंध्र की स्थिति पर जो टिपण्णी की है वह द्रष्टव्य है :

"आज की स्थितियाँ अलग हैं । समुद्र तटीय जिले नवीन प्रभावों की पहुँच में रहने के कारण सांस्कृतिक दृष्टि से उदीयमान हैं । सामाजिक सुधार तथा राष्ट्रीय आंदोलनों के लिए ये आगार हैं । साहित्य तथा अनन्य कला रूपों में भी ये जिले नवीन वैविध्य एवं सौंदर्य को छू रहे हैं । ये जिले एक तरफ़ यूरोपीय सभ्यता के प्रभाव में तथा दूसरी तरफ़ बंगाली तथा अन्य सांस्कृतिक पुनरुत्थानवादी आंदोलनों के प्रभाव में पूर्णतः आ गये । अतः जीवन की अभिरुचियों की दृष्टि से ही नहीं, अपितु भौतिक, नैतिक एवं साधारण सांस्कृतिक वृद्धि में भी ये उन्नत स्थान अर्जित कर पाये हैं ।"

प्रांतीय वैशिष्ट्यों को गणना में न लेते हुए सामान्य रूप से आधुनिक तेलुगु साहित्य पर अपने विचार प्रकट करते हुए रेड्डी जी ने संतोष व्यक्त किया कि यह मध्यकालीन प्रबंधो में ह्रासोन्मुख कृतित्व के कृत्रिमता रूपी रसहीन मार्गों से विमुक्ति पायी है । साहित्य स्वरूप के विषय में एवं भाषा के संदर्भ में रेड्डी जी प्रबल परंपरावादी होने के बावजूद आश्चर्यप्रद प्रक्रिया से वैविध्य के साथ विकसित साहित्य से आनंदित हुए !

"मैं एक बात साहस के साथ कह सकता हूँ । प्रबल राष्ट्रीयता, एवं बंगला साहित्य के प्रभाव से आंध्रों का अंतःकरण विविध रीतियों एवं विभिन्न स्तरों में व्यक्त हो रहा है । समकालीनों में लगता है कि प्रतिभावनों की संख्या अधिक है । वैविध्य पूर्ण साहित्य भी अधिक मात्रा में निर्मित किया जा रहा है । भाव प्रस्तुतीकरण में सरलता, मानसिक आवेगों में ईमानदारी, सहज अलंकार आज कल के साहित्य के अभिन्न अंग बनते जा रहे हैं । हमारा साहित्य क्षीण दशा के नाम से अभिहित प्रबंध युग की अस्वाभाविकताओं और बनी-बनायी शैलियों से बहार आ गया है । "

इसी आशावादी स्वर में बोलते हुए रेड्डी जी ने एक आकांक्षा भी प्रकट की :

> "काश ! विगत 25 वर्षो में हमारे साहित्य में आये सामाजिक नाटक, गीतिकाव्य, कथात्मक काव्य, व्यंग रचनाएँ, सामाजिक व मनोवैज्ञानिक उपन्यास, हास्य कहानियाँ और इतिहासों के साथ समकालीन साहित्य के

इतिहास को कोई भी सहनशील व कल्पना प्रवण समर्थ लेखक समग्र रूप से लिखता ।''

रेड्डी जी में वह सहानुभूति, और कल्पना प्रवणता निश्चित रूप में थी । लेकिन हमारे दुर्भाग्य से उनके पास समय व शक्ति की कमी हो गयी थी । आलोचक के रूप में आप ने साहित्यक समीक्षा को पारंपरिक पांडित्य से बचाया । आपने जिज्ञासु छात्र को नवीन दृष्टिकोण, जागरूक आलोचक को नये मूल्यों को प्रतिमान विनिर्मित कर दे दिया । वास्तव में नव आलोचकों में वे प्रथम हैं ।

9

निबंधकार

रेड्डी जी में कवि की संवेदनशीलता, आलोचक की कुशाग्रता के साथ निबंधकार की सहज प्रवृत्ति भी विद्यमान थी । जिस स्तर के वे साहित्य के आलोचक रहे, उसी स्तर के जीवन के आलोचक भी । उन के निबंध संख्या में कम होने पर भी उन का विषय वृत्त व्यापक है । निबंधकार के रूप में रेड्डी जी ने अपने निबंधों में "बेकन" की भाँति सुगठित संक्षिप्तता, सूक्तिमत्ता और सूत्रात्मकता के गुण हासिल किये थे । "लैम्ब", "हेज्लिट", "लुकास" और "गार्डिनर" की भाँति मनमोहक वैयक्तिक शैली में वैयक्तिक निबंध लिखने का प्रयास आप ने नहीं किया था । विषय विशेष के भारीपन को कम करते हुए जिस विधि से आपने निबंधों की रचना की वह "मान्टेन" को याद दिलाती है ।

रेड्डी जी के प्रकाशित निबंधो में से अत्यधिक व्यासमंजरी नामक एक संग्रह में उपलब्ध हैं जो 200 या उससे कुछ अधिक पृष्ठों में है । इन निबंधों में से अधिकांश प्राक्कथन या भूमिकाओं के रूप में हैं जो उन्होंने लेखकों के अनुरोध पर उन की पुस्तकों के लिए लिखी हैं या ऐसे व्याख्यान हैं जो उन्होंने लोगों के अनुरोध पर समय समय पर किसी कवि या कवि के आश्रयदाताओं की स्मृति में आयोजित स्मारक व्याख्यानों में दिये हैं । उन के व्याख्यान श्रोताओं के सम्मुख पठित निबंध से होते हैं । "मेकाले" जैसे धारा प्रवाह व्याख्यान न दे सकने पर भी वे हमेशा व्याख्यान की प्रामाणिकता पर अधिक जागरूक रहते थे । अस्पष्ट विचार और अव्यवस्थित लेखन से वे दूर रहते थे । तेलुगु और अंग्रेजी दोनों भाषाओं में वे इसी नियम को अमल में लाते थे ।

संख्या में बीस से कम ये निबंध प्राचीन साहित्य से लेकर समकालीन साहित्य तक, इतिहास, धर्म से लेकर शिक्षा, समाज शास्त्र विषयों तक व्याप्त हैं । विषयोचित और संदर्भोचित रीति से वे निबंधों की शैली में युक्तियुक्तता, चुटकलेपन, काव्यात्मकता व दार्शनिकता का पुट लाते थे । उन का विषय प्रतिपादन तो पूर्वाधिकार संपन्न मूल सिद्धांतों एवं सामयिक समस्याओं के परिपूर्ण निश्चित ज्ञान के आधार पर ही होता था ।

प्रथम आंध्र कवि नन्नय भट्ट के आश्रयदाता चालुक्य वंश के राजराज नरेंद्र के संबंध में जो निबंध है वह राजमंद्री में आयोजित वार्षिक समारोह के अवसर पर उन के दिये हुए अध्यक्षीय भाषण का पुनर्मुद्रण है । इस निबंध के अधिकांश भाग में इस का विवेचन किया गया है कि किन परिस्थितियों में आंध्र महाभारत की रचना की गयी और आदि कवि नन्नय ने किस तरह अपनी रचना की है । मूल विषय की स्थापना से पहले प्रस्तावना के रूप में

वे इस टिप्पणी को जोड़ने का लोभ संवरण न कर पाये कि हमारी इतिहास दृष्टि कैसी है और उस में क्या कमी है । उन्हों ने कहा :

> "... ऐतिहासिक व्यक्तियों का स्मरण न करना और पुराण पुरुषों की पूजा करना हमारी परंपरा का एक हिस्सा है । ऐतिहासिक तथ्यों का मनन करने एवं उन्हें जनता में प्रचारित करने के उद्देश्य से ऐसे उत्सवों के आयोजन में आप लोग प्रथम हैं । मेरी इच्छा है कि अन्य लोग भी आप के इस उदाहरण का अनुकरण करें । मेरी समझ में नहीं आता कि हम परलोक वासियों के योग-क्षेम केलिए उत्सव आदि मनाते हैं, लेकिन इस लोकके योगक्षेम केलिए उत्सव क्यों नहीं मनाते ? क्या यह हमारी इतिहास दृष्टि की कमी का प्रमाण है ? भविष्य में हम सब इस कमी को दूर करने का प्रयत्न करेंगे ।"

नन्नय की रचना कला के बारे में आपने यों कहा :

> "नन्नय प्राचीन कविता के ही नहीं, गद्य रचना के भी आद्य हैं । जैसे सुंदर तेलुगु गद्य नन्नय ने लिखा, वैसा किसी ने नहीं लिखा । लगता है कि चिन्नय सूरी ने नन्नय के गद्य को आदर्श बना कर अपनी सुंदर कृति "मित्रलाभमु" की रचना की ।"

गोपाल राव नामक एक कवि के काव्य "अपूर्व संघ संस्करण" की प्रस्तावना लिखते हुए आपने व्यंग्य साहित्य के बारे में अपने विचारों को पाठकों के सामने यों व्यक्त किया :-

> "हमारे देश में व्यंग्य रचनाएँ आम तौर से उपलब्ध नहीं हैं । संभवतः सरल हास्य की प्रवृत्ति हमारे लिए सहज नहीं है । कटु व्यंग्य तो है, लेकिन वह स्पष्ट निंदा व आरोपों से भिन्न नहीं दिखता । धर्म, समाज या सब से संबंधित सामान्य भाव यहाँ तक कि स्त्री व पुरुष भी व्यंग्य के लक्ष्य हो सकते हैं ।... अंग्रेजी के लेखक "स्टिफट " ने अपनी शक्तिशाली रचनाओं के माध्यम से मानव के स्वभाव पर तीखा प्रहार किया ।...
>
> "सत्यराजा पूर्वदेश यात्रलु" के लिखने में इन्हें आदर्श के रूप में लिया गया । लेकिन हमारे सौभाग्य से उन की रचनाएँ उतनी तीखी नहीं हो पायीं । विवरण केलिए देखिए परिशिष्ट

प्रमुख इतिहासकार, शिलालेखों के समीक्षक मल्लम्पल्लि सोमशेखर शर्मा की "आंध्रवीरुलु" नामक पुस्तक की भूमिका लिखते हुए रेड्डी जी ने देश भक्ति और इतिहास-ज्ञान के आपसी संबंधों की चर्चा की है । इस विषय पर भी आप ने दो टूक बातें कहीं :

> "कुछ लोग यह दलील देते हैं कि देश भक्ति और इतिहास ज्ञान में अविनाभाव संबंध रहता है । इस विषय में मेरे अपने संदेह हैं । क्या भक्ति और ज्ञान ये दोनों परस्पर एक दूसरे पर आधारित हैं ? श्रद्धा या भक्ति क्या ज्ञान के साथ विकासमान हैं ? सच्ची श्रद्धा और अंध श्रद्धा में क्या कोई संबंध नहीं

हैं ? इस के बारे में अब तक कोई मतैक्य नहीं हैं । पता नहीं कभी आगे होगा कि नहीं..."

शिक्षा की भूमिका से संबंधित निबंध में वे ज्ञान और कर्म के बीच के संबंध की चर्चा करने लग जाते ? कुछ मूलभूत प्रश्नों की शृंखला से आपने चर्चा की शुरुआत की :-

" कौन अधिक महत्त्वपूर्ण हैं– ज्ञान या कर्म ?

समानार्थक शब्दों की सहायता से इस मसले का समाधान कुछ हद तक किया जा सकता है । जीवन में पहले कौन उत्पन्न होता है ? ज्ञान या आचरण, चिंतन या चरित्र, कथनी या करनी ? इस चर्चा को आगे बढ़ाते हुए वे कहते हैं :

... जीवन की सफलता के लिए अकेला ज्ञान पर्याप्त नहीं है । प्राकृतिक नियमों के अनुसार सफलता के उपकरणों में से ज्ञान एक है ।"

उन की दृष्टि में अनुभव व ज्ञान को प्राप्त करने के लिए चिंतन क्षमता पर्याप्त होने पर भी जीवन प्रक्रिया के लिए अन्यों के अतिरिक्त इन मूल्यों की भी आवश्यकता होती है जैसे, 1. प्राकृतिक नियमों का ज्ञान, 2. उन का अनुप्रयोग, 3. विभेदीकरण का विवेक, 4. न्याय का विवेक और, 5. शारीरिक श्रम । इस पृष्ठभूमि में भारतीय विश्वविद्यालयों की, जो पाश्चात्त्य देशों के विश्वविद्यालयों से भिन्न तरीके से मात्र ज्ञान को प्रमुखता देते हुए अन्य मूल्यों का तिरस्कार करते हैं, कमियों की ओर संकेत करते हुए आपने कहा कि हमारे विश्वविद्यालय समग्रता को तिलांजलि देकर अतीत की ओर अग्रसर होते जा रहे हैं । कहना न होगा कि अतीत का भी अपना महत्त्व है, लेकिन मात्र अतीत के प्रति कृतज्ञता भाव रखने से प्रगति को प्राप्त नहीं कर सकते । शिक्षा के क्षेत्र में आमूल चूल परिवर्तन की आकांक्षा करते हुए अपनी बात वे यों समाप्त करते हैं :

"वर्तमान का कर्तव्य अतीत में जीना नहीं हैं । अतीत और वर्तमान से तेजोमय भविष्य निर्माण के लिए कठिन परिश्रम करना हैं । अतः हमें विश्वविद्यालय-शिक्षा में परिवर्तन लाने के लिए आगे बढ़ना हैं, भले ही हम पर कृतघ्नता का अभियोग लगे ।"

पक्के ब्रह्मचारी होने पर भी रेड्डी जी को विवाह व्यवस्था के संबंध में सजीव दिलचस्पी रहती थी । प्राचीन साहित्य का छात्र होने के नाते आपने प्राचीन हिंदू विवाह व्यवस्था की विभिन्न परंपराओं पर चिंतन किया था । विवाह व्यवस्थाओं पर लिख गये अपने निबंधों में से एक में आप ने यह सवाल उठाया कि स्वयंवर क्या राक्षस विवाह नहीं हैं ? उन का विश्लेषण है कि स्वयंवर को भी एक प्रकार से राक्षस विवाह के अंतर्गत गिनाया जा सकता है । उन का यह विश्लेषण मौलिक है और विचारोत्तेजक है :

"इस विवाह प्रक्रिया के आधार पर यह प्रमाणित किया जा सकता है कि यह स्वेच्छा विवाह प्रक्रिया नहीं हैं । स्वयंवर उत्सव के आयोजन से पहले ही विवाह के लग्न का निर्धारण किया जाता है । इस बात की क्या गैरंटी

है कि उस उत्सव में आये हुए वरों में वधु के अंगीकार योग्य वर होगा ? यदि उन में से कोई भी उन की पसंद के नही हैं, तब क्या उसे सभी को तिरस्कार करने की स्वतंत्रता रहेगी ? मेरी समझ में यहाँ वधु की इच्छा की तुलना में विवाह के लग्न को अधिक प्रधानता है । क्यों कि उसे उन में से किसी न किसी को अनिवार्य रूप से वरण करना ही पड़ता है । जो कुछ हो, एक को छोड़कर शेष सभी वर वधु के पिता पर आक्रमण करने के लिए तैयार हो जाते हैं । इसलिए मेरी आशंका है कि स्वयंवर वधु की स्वेच्छा से संपन्न नहीं होता । वह राक्षस विवाह का एक प्रकार मात्र है ।''

अपने भाई विचित्रवीर्य के लिए भीष्म के द्वारा काशी राजा की पुत्रियों को हथियाना, शिवजी के धनु के भंग के साथ जुड़ा सीता स्वयंवर, और मत्स्ययंत्र भेद से संघटित द्रौपदी स्वयंवर आदि प्रमुख उदाहरणों से रेड्डी जी ने अपनी दलील को संपुष्ट किया । दमयंती स्वयंवर से पहले ही नल से प्रेमासक्त थी, इसलिए दमयंती-स्वयंवर को वे अपवाद मानते हैं । वे कहते हैं :

''असलियत में सीता और द्रौपदी जुए की बाजी की वस्तु समान हैं । विवाह के लिए उन्हें अपने मन पसंद व्यक्ति को चुनने का हक नहीं था । दोनों के विषय में शक्ति का परीक्षण ही आधार होने के कारण उन दोनों के विवाहों को राक्षस रीती से संपन्न विवाह ही माना जाएगा ।''

अब भी कुछ इलाकों में वर के द्वारा कदंब वृक्ष के खंडन की प्रचलित विधि को उस पद्धति के अवशेषों के रूप में मानते हुए रेड्डु जी अपना निष्कर्ष यों प्रस्तुत करते हैं :

''राक्षस विवाह पद्धति को हर संदर्भ में एवं हर स्तर पर आपत्तिजनक मानना बड़ा गलत होगा । यह पूरी तरह योग्यता रहित और द्युति हीन नहीं है । इसलिए प्राचीन काल में राजाओं ने इस का अनुमोदन किया । समय के बीतने के साथ स्वयंवर के प्रचलन के समाप्त होने का कारण प्रायः राक्षस विवाह के साथ जुड़ा हुआ कलंक ही हो सकता है ।''

गांधर्व विवाह रीति की प्रशंसा करते हुए आपने यह कहा कि :

''गांधर्व विवाह स्त्री पुरुष की सहज प्रवृत्ति के अनुकूल है । हमारे लोगों ने इसे असांस्कारिक माना । गांधर्व विवाह असल में उतना प्राचीन है जितना कि मानवसृष्टि; मंत्र और वेदों से भी प्राचीनतर । सर्वोन्नत और सर्वोत्कृष्ट मानव प्रेम का यह शाश्वत उदाहरण है । जब तक स्त्री-पुरुष जीवित रहेंगे तब तक यह जीवित रहेगा ।''

रामलिंगा रेड्डी को धार्मिक आडंबर पसंद नहीं थे । सनातन हिंदुओं से संबद्ध विस्तृत कर्मकाण्डों के प्रति वे असहिष्णु रहे । पवित्र हिंदू की मंदिर में पूजा पद्धति से वे निरुत्साहित होते थे । इसे वे यहाँ तक कहने के लिए तैयार हो गये कि मंदिर के पुजारी को दलाल के

रूप में नियुक्त कर के मानव द्वारा अपने एवं सृष्टिकर्ता के बीच तय किया गया व्यक्तिगत सौदा मात्र है यहाँ ।

ये विचार तथा कुछ अन्य तीखी टिप्पणियाँ उन के निबंध में मिलती हैं, जो उन्हों ने हिंदू धर्म के विकास में भजन मंडलियों के योगदान पर लिखा था । ईसाई और मुसलमानों की सामूहिक प्रार्थनाओं के द्वारा जो सामूहिक योग-क्षेम की आकांक्षा प्रकट होती है, उससे भिन्न रूप में हिंदुओं के चिंतन में वैयक्तिक मोक्ष की प्रधनता को देखकर वे असंतुष्ट हुए । इस प्रकार के सामूहिक योगक्षेम की आकांक्षा का अनुसरण सिक्खों ने भी गुरु नानक देव के मार्गदर्शन में किया है । हिंदू समाज में इस के निकटतम सादृश्य अभिगम है भजन मंडलियाँ जो प्रमुख रूप से हमारे गाँवों में कार्यरत हैं ।

इन भजन मंडलियों का क्षीण हो जाना और इन के स्थान पर पूजा आदि कार्यों को संपन्न करने के लिए ब्राह्मण पुजारियों का पुनरुद्धार के प्रति अपना असंतोष व्यक्त करते हुए अपने निबंध में रेड्डु जी ने लिखा कि :

> "भजन मंडलियों को मंदिरों के रूप में रूपांतरण न भगवान के हित में हैं और न देश के । मंदिरों को भजन मंडलियों में रूपातंरित करना भगवान की महिमा को मंडित करता है और जनता की महत्ता को बढ़ाता है ।"

10

समाजशास्त्री

परिमाण एवं प्रयोजन की दृष्टि से "भारत अर्थ शास्त्रमु" संभवतः रामलिंगा रेड्डी जी की महत्वाकांक्षी कृति है । यह आकारमें 450 से कुछ अधिक पृष्ठोंवाली रचना है । भारत की आर्थिक व्यवस्था पर लिखी हुई कृति-सी लगने पर भी, इसे वास्तव में भारत की सामाजिक परंपराओं पर लेखक की व्यक्तिगत व्याख्या से संबंध ग्रंथ कहा जा सकता है । जिस तरह से "कौटिल्य" का अर्थशास्त्र मौर्यकालीन भारत की आर्थिक व्यवस्था के विषयों तक परिमित ग्रंथ नहीं है, वैसे ही रेड्डी जी का अर्थशास्त्र उन के समय के भारत के आर्थिक विषयों से संबंधित संकुचित पाठ्यक्रम तक परिमित नही हैं । वर्ष 1909-12 के बीच के समय मैसूर के विश्वविद्यालय में आचार्य के रूप में कार्य करते वक्त छात्रों के लिए अर्थ शास्त्र पर जो व्याख्यान दिए थे, उन से इस ग्रंथ के उद्‌गम का निसंदेह संबंध जोड़ा जा सकता है । लेकिन "पाश्चात्य देशों से भिन्न तरीके से भारत को अपने भौतिक संसाधनों का किस तरह से नियोजित करना चाहिए, इस विषय से संबद्‌ध रेड्डी जी के विचारों के सत्व का यथार्थ चित्रण यह ग्रंथ प्रस्तुत करता है । यह भारत को समझने केलिए रेड्डी जी के द्वारा यथा साध्य प्रस्तुत सुदीर्घ निबंध है ।

संभवतः यह प्रथम प्रधान प्रयोग है जहाँ साहित्येतर विषयों को (उपयोगी साहित्य के विषयों को) तेलगु के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है । स्फूर्तिदायक मौलिक दृष्टिकोण से प्रस्तुत इस निबंध की शैली प्रशंसनीय है । पढ़ने में उपन्यास-सा लगनेवाला यह ग्रंथ कथन शैली में एवं विवरण के प्रस्तुतीकरण में वैशिष्ट्य को लिए हुआ है ।

हिंदू परंपरा के अनुसार जीवन के चार प्रधान अंग, चार पुरुषार्थ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की चर्चा करते हुए अर्थ, अर्थात भौतिक संपदाओं को तिरस्कृत करने की प्रवृत्ति को आपने अनुचित बताया । इसे परिकल्पना न मान कर विशुद्ध यथार्थ माने तब भी यह विवेकपूर्ण नहीं है । क्यों कि इस दुनिया में भौतिक संसाधनों की सहायता के बिना हम कोई उल्लेखनीय उपलब्धि हासिल नहीं कर सकते । कुछ व्यापारी अनैतिक तरीकों से धनार्जन करते हैं फिर भी इस विचार से कि उन का सारा धन अनैतिक तरीकों से कमाया गया है, वे सहमत नहीं होते । वे न इस हिंदू विश्वास को कि संपदा पाप है, और न मार्क्स के इस दृष्टिकोण को कि संपदा बेईमानी से अर्जित की जाती है, स्वीकार करते हैं । 'ईमानदारी उत्कृष्ट नीति हैं' इस अंग्रेजी सूक्ति को वे स्वीकार करते हैं ।

इस पुस्तक में उन का सतत प्रयास यही रहा कि लोक प्रचलित उस हिंदू धारण का विरोध करें जो यह मानती है कि आध्यात्मिक पुण्यफल की प्राप्ति केलिए भौतिक संपदाओं के प्रति विमुखता आवश्यक है । उन का कहना था कि यह धारणा लोगों की पहल-शक्ति, उन की कठिन परिश्रम करने की क्षमता को नाश करने के साथ उन के अपने जीवन स्तर को उँचा उठाने के उद्यम को भी सुखा देती है । आर्थिक उन्नयन केलिए यह धारणा अत्यंत हानिकारक है । रेड्डी जी के अनुसार अर्थ साधना के बिना धर्म का संरक्षण संभव नहीं हैं ।

धार्मिक उन्नयन एवं राष्ट्रीय प्रगति के लिए उन्होंने जिन प्रमुख गुणों पर जोर दिया, वे हैं ... 1. कठिन परिश्रम (इस में शारीरिक श्रम भी सम्मिलित है), 2. सामर्थ्य या योग्यता और आत्मविश्वास जो एक दूसरे पर आश्रित हैं । 3. प्राकृतिक नियमों का ज्ञान (जिस की सहायता से यूरोपवासियों ने जल शक्ति एवं बिजली को इस्तेमाल में लाकर भूमिगत खनिज लोहे के भण्डारों का उत्खनन कर और उन के जरिए उद्योग धंधों एवं व्यापार वाणिज्य पर अधिकार जमा लिया था) 4. दूरदृष्टि जो इंग्लैंड और अमरिका के निवासियों को ऐसी बृहत परियोजनाओं को हाथ में लेने में सहायक रही जो भावी पीढियों केलिए उपयोगी रही, भले ही उन से उनको तत्काल लाभ न पहुँचा है । 5.पूंजी निवेश के साथ जोखिम की परवाह किये बिना व्यापार वाणिज्य करने में जीवट साहस (यूरोपवासियों की स्वयं रोजगार योजना की प्रवृत्ति के साथ भारतीयों की सरकारी नौकरियों पर आधारित होने की प्रवृत्ति की भिन्नता की ओर यहाँ संकेत करना चाहते हैं)

अपनी दलीलों को आगे बढ़ाते हुए आपने हिंदू चिंतन के तथाकथित उन आदर्श सद्गुणों के दोषों का छिद्राण्वेषण किया जो वैयक्तिक इच्छाओं को कम करके संतुष्ट होने एवं सादा जीवन व उच्च विचार की दलीलें प्रस्तुत करते हैं । इस के विपरीत आप ने पाश्चात्य देशों की उस प्रवृत्ति की प्रशंसा की जहाँ प्रतिद्वन्द्विता की मनोदशा के तहत प्रत्येक व्यक्ति दुरुस्त हो कर आपनी सारी काबिलयत को इस्तेमाल करने के लिए "दिव्य-असंतुष्टि" की चेतना में रहता है ।

यूरोपीय समाज से भारतीय समाज की तुलना करके, हाल की शताब्दियों में उस के पतन पर विचार करते हुए आप ने उस के प्रमुख कारणों में निम्न लिखित स्थितियों का उल्लेख किया :

1. संकुचित विचार के कारण सजातीय विवाह, फलतः दुर्बल संतान की उत्पत्ति (भिन्न जातियों के विवाह से होनेवाले प्रयोजनों का पूर्णतः विस्मरण किया जाना) 2. वृद्ध पुरुषों के साथ बालिकाओं का विवाह (अनमेल विवाह) जो बाल्यावस्था में वैधव्य तथा अन्य सामाजिक कुरीतियों का कारण बनता है । 3. कुपोषण जहाँ असंपूर्ण आहार के कारण विटमिनों की कमी हो जाना, और भोजन की आदतों में क्रमिक व्यवस्था के अभाव में लोगों का क्रमशः दुर्बल हो जाना । 4. खराब आवासीय स्थिति - कारखानों में और घरों में उचित हवा व प्रकाश की कमी, और शैनिटरी सुविधाओं की व्यवस्था किये बिना गृहों का निर्माण ("काडबरी" कंपनी की "बोर्नबिल" नामक श्रामिक-कालोनी, "बीवर" का "सनलाइट पोर्ट" "कार्नेगी" की "पिट्स बर्ग" कालानी जो उपर्युक्त सुविधाओं से संपन्न हैं, उत्तम उत्पादकता के लिए ख्याति प्राप्त हैं) 5. आधुनिक औद्योगिक सामाजिक

आवश्यकताओं के अनुरूप उचित कौशलों के सीखने में विमुखता । 6. जाति व्यवस्था जो सामाजिक स्तर विन्यास को जन्म दे कर सामाजिक गतिशीलता को खत्म करती है । जाति विशेष में पैदा हुए व्यक्ति को उस जाति के पेशे को ही स्वीकार करना होगा चाहे उसे उस में अभिरुचि हो या न हो । अपनी जाति से बहिष्कृत हुए बिना, सामाजिक मर्यादा को खोये बिना कोई व्यक्ति चाह कर भी अपनी जाति से संबद्ध पेशों को छोड़ नहीं सकता । यह पहले से प्रचलित भाग्यवाद को बढ़ावा देती हैं । 7. सामाजिक बुराइयाँ - संयुक्त परिवार की व्यवस्था को रेड्डी जी ने इस में जोड़ा है । उन का मानना है कि बहुत परिवारों में कमानेवाला एक व्यक्ति होता हैं, तो उस की कमाई पर आश्रित व्यक्ति असंख्य होते हैं जैसे चाचा, ताऊ, उन की संतान, भानजे आदि आदि । अस्वस्थता एवं अन्य वैयक्तिक विपदाओं के समय इस से कायदा थोड़ा बहुत होने पर भी संयुक्त परिवार की व्यवस्था आमतौर पर व्यक्तियों में अकर्मण्यता की आकांक्षा को जागृत करने में कारक हो जाती है ।

पारंपारिक भिक्षावृत्ति (भिक्षावृत्ति को एक पेशे के रूप में लेना) और भीख माँगने को भी आप ने चर्चा का विषय बनाया । 'विभिन्न प्रकार के दान करना' को अपनी उदारता का गुण माननेवाली जातियों पर आश्रित हो कर दान प्राप्त करते हुए जीवन यापन करना दान माँगनेवाली जातीयाँ अपना सद्‌गुण समझने लगीं । इस ने एक प्रकार की परजीविता को प्रोत्साहित किया साथ ही कइयो में आर्थिक मामलों में आत्मविश्वास का हरण भी किया । समाज पर स्वस्थ प्रभाव डालने की संभावना इस में नहीं है ।

कोई प्रश्न कर सकता है कि भारत की अस्वस्थ परंपरा को इतना सविस्तार चित्रित करने के बाद रेड्डी जी ने इस के समाधान में क्या सुझाव दिये ? उन्होंने मुख्यतः तीन विषय सुझाये । वे हैं : 1. विभिन्न कार्यक्षेत्रों में अधिक से अधिक मात्रा में वैयक्तिक प्रग्रास 2. बृहद रूप से औद्योगिकीकरण और 3. उत्पादन एवं उपभोज्य वस्तु विनिमय केलिए सहकारी समितियों का गठन ।

आर्थिक व सामाजिक विषयों में पाश्चात्य जीवन तरीके के प्रति निर्द्वन्द्व उत्साह प्रदर्शित कर रेड्डी जी ने "विक्टोरिया" और "एड्वर्ड" के शासन काल के उत्तरार्ध के बुद्धिजीवियों के प्रतिनिधियों की सूची में अपने को शुमार करवा लिया । उस समय ब्रिटिश राज्य उत्कर्ष पर था । तब तक पाश्चात्य भौतिकवाद को जो आर्थिक उदारतावाद से जुड़े स्वेच्छा व्यापार वाणिज्य से संबद्ध था, धक्का नहीं लग चुका था । प्रथम विश्व युद्ध और बोल्शविक क्रांति केलिए अभी कुछ समय बाकी था । स्थायित्व को प्राप्त किये हुए यूरोप के विचार अभी भविष्य में संभाव्य डगमगाहट से मुक्त थे । इन स्थितियों के परिवेश में हमें रेड्डी जी के आत्म संतोष एवं आत्म विश्वास को समझना होगा । हिंदू चिंतन प्रक्रिया पर आधारित पारंपारिक भारतीय समाज पर उन की आलोचना उन के समय में ही नहीं, इतने वर्षों के बीत जाने पर आज भी वैसी ही तीखी है ।

11

युग प्रवर्तक

प्रत्याशा में इतनी प्रचुरता लेकिन निष्पादन में इतनी अल्पता, और पूर्ण आकांक्षा को लिए किंतु स्वल्प उपलब्धि हासिल किये हुए ऐसे जीवन को अन्यत्र देखना दुर्लभ है ।

ये रेड्डी जी के प्रगाढ़ प्रशंसकों में से एक व्यक्ति, प्रमुख प्रत्रकार स्वर्गीय के. ईश्वरदत्त के वाक्य हैं जो उन्हों ने रामलिंगा रेड्डी के बारे में लिखा था । ये 1929 में लिखे गये हैं जब रेड्डी जी अपनी आयु की अर्ध शताब्दी पूरी कर रहे थे । लेकिन यह मूल्यांकन रेड्डी जी के राजनीतिक जीवन के संबंध में था ।

लगभग ये ही वाक्य उन के साहित्यिक जीवन के बारे में कहे जा सकते हैं । लेकिन थोड़े से संशोधन के साथ - राजनीतिक क्षेत्र की तुलना में आपने यहाँ उल्लेखनीय उपलब्धि हासिल की है । इस क्षेत्र में भी उन्होंने अचानक कार्य प्रारंभ किया था । अपने कार्य को वे पिनपिनाहट के साथ समाप्त न करने पर भी यह तो मानना पड़ेगा कि अपने कार्य को उन उम्मीदों के अनुसार न निभा पाये जो उन जैसे प्रतिभावान व्यक्ति से की जा सकती है । उन के बारे में उन के आश्रित व प्राचीन साहित्य के अध्ययन में सहयोगी श्री राळ्लपल्लि अनंतकृष्ण शर्मा ने कहा कि :

> "उन के साथ के वैयक्तिक संबंधों की निकटता को थोड़ी देर केलिए विस्मृत कर निष्पक्ष रूप से अनुशीलन करूँ तो मैं दुःख के साथ यह कहे बिना नहीं रह सकता कि उन जैसे महत्तर असाधारण क्षमता संपन्न व्यक्ति से जो संभव हो सकता था सो वे नहीं कर पाये । उन्हों ने वास्तव में जो कार्य संपादित किया उस पर तुलनात्मक दृष्टि से विचार करेंगे तो वह आंशिक मात्र था, भले ही हम में से कुछ लोगों को वह प्रभावोत्पादक लगे ..."

छात्र जीवन में ही, जब वे उन्नीस साल के थे, उन्होंने ऐसे सुदीर्घ काव्य की रचना की थी, जो तेलुगु साहित्य में एक मील के पत्थर की तरह है । बाद के वर्षों में उन्हों ने जो लिखा वह छुट-पुट छंद मात्र थे । दुनियादारी से प्रौढ़ता प्राप्त व्यक्ति में क्या सर्जनात्मकता सूख गयी थी ?

एक युवक ने दो दशकों को पार नहीं किया था, चौंकानेवाले मौलिक दृष्टिकोण से "कळापूर्णोदयमु, पर बीजगर्भित समीक्षा प्रस्तुत की थी । बाद की अर्धशती तक संपन्न अपने साहित्य-जीवन की रचनाएँ हैं; कुछ छुट पुट निबंध, दूसरों के ग्रंथों केलिए लिखी गयी

भूमिकाएँ व प्रस्तावनाएँ जो कुल मिलाकर एक छोटे से संकलन में समाहित हो जाते हैं । एक बड़े आलोचक से यही अपेक्षित था ? "लगता है कि अपने क्रिश्चियन कॉलेज के दिनों से वे कवि या आलोचक के रूप में आगे बढ़ न सके ।" ये कुछ लोगों की दलीलें हैं । अगर बढ़ भी गये तब भी वे अपनी रचनाओं के माध्यम से इसे प्रमाणित नहीं कर पाये ।

मृत्यु पर्यंत आंध्र महाभारत उन का अभिलषित काव्य रहा । जब इच्छा हुई उत्प्रेरणा व समर्थन पाने उन्हों ने उसका कई बार अध्ययन किया । उन्होंने उस के बारे में गंभीरता से चितंन-मनन किया । द्रौपदी और उन जैसी अन्य चरित्रों का विश्लेषण प्रस्तुत करने के अतिरिक्त वे उस की कोई विस्तृत व्याख्या लिख न पाये । प्राचीन साहित्य में उतनी पैठ रखनेवाले एक विशिष्ट विद्वान से क्या इतना ही अपेक्षित था ? यदि उन्हें पर्याप्त समय मिल भी गया होता तो क्या बहुत उत्साह से आकांक्षित महाभारत की उस उत्कृष्ट व्याख्या वे हमें देने का सामर्थ्य रखते ? यह ऐसा प्रश्न है जो उनके कुछ संशायात्मा पाठकों में उठने लगता है ।

ऐसे प्रश्न हमें 'अगर - तो , इसलिए वैसा होता', काल्पनिक दुनिया में ले जाते हैं । अब हम निश्चित रूप से यह कह नहीं सकते कि अगर रेड्डी जी का ध्यान राजनीति और शिक्षा विषयक प्रशासनिक कार्यों की ओर न गया होता, वे अधिक मूल्यवान एवं सतत स्मरणीय ग्रंथ हमें दे सकते थे कि नहीं । "कीट्स" और "शैली" अल्प आयु में ही दिवंगत हुए । उन की रचनाएँ हमारे सामने हैं । अगर वे दीर्घकाल तक जीवित होते तो उन्हों ने और क्या लिखा होता ? "इस प्रकार के प्रश्न करने के अवसर दिये बिना ही उन की रचनाएँ अपनी तरफ़ हमारी दृष्टि आकृष्ट कराती हैं । इसी प्रकार हमें रेड्डी जी का मूल्यांकन उन की रचनाओं के आधार पर करना है जो वे हमें दे गये ।

इससे पूर्व के अध्यायों में रेड्डी जी की प्रकाशित रचनाओं पर चर्चा की गयी है । तेलुगु के आलोचना साहित्य में "कवित्वतत्वविचारमु" को एक मील के पत्थर के रूप में स्वीकार किया गया । हम यह नहीं कह सकते कि प्रबंध काव्यों के मूल्यांकन में उन्हों ने जो तथ्य या विवरण प्रस्तुत किया सो प्रबंधों पर विशेष रूप से अनुसंधान कर रहे उन सब केलिए स्वीकार्य है । उन के उस प्रबंध की कमियों का उल्लेख करते हुए प्रत्युत्तर में अनेक प्रबंध सामने आये । काळूरि व्यासमूर्ति ने रेड्डी के द्वारा प्रतिपादित अनेक सिद्धांतों का खंडन करने का प्रयास किया । भारतीय सौन्दर्य शास्त्र में विशेषज्ञ डॉ. जी.वी.कृष्णा राव ने मद्रास विश्वविध्यालय में प्रस्तुत अपने शोध प्रबंध "स्टडीज़ इन कळापूर्णोदयम्" में यह दर्शाया कि रेड्डी जी के अर्थग्रहण और व्याख्या में कुछ दोष हैं । वे रेड्डी जी के प्रति एक ओर आदर भाव रखते हुए भी, भारतीय परंपरा में, और भारतीय साहित्यिक परिधि में रचित एक कला कृति के मूल्यांकन में रेड्डी जी के द्वारा उधार में ले आये असंबद्ध मानकों का प्रयोग करना स्वीकार न कर पाये । किन्तु रेड्डी जी आलोचना के मूलभूत आधार को सार्वभौमिक बनाने में सफल हुए । रेड्डी जी ने इस दिशा सें कोई गलत कदम नहीं उठाया है, बाद के परिणाम इस को प्रमाणित करने लगे । आज कल के आलोचक इस संदर्भ में रेड्डी जी से एक कदम आगे बढ़े हैं । तब भी वे उन्हीं की दिशा में जा रहे हैं ।

तेलुगु साहित्य के अध्ययन में रेड्डी जी ने एक और युगांतकारी योगदान किया । भाषाविज्ञान में द्राविड स्कूल केलिए "डॉ. काल्डवेल" प्रथम आचार्य हैं तो डॉ. रेड्डी को साहित्य के द्राविड स्कूल के आधुनिक प्रवक्ता ठीक ही कहा जा सकता है । अतीव महत्त्व देने के कारण कहीं कुछ दोषों के रहने के बावजूद "डॉ. काल्डवेल" ने स्वीकारयोग्य प्रमाणों के साथ द्राविड भाषा परिवार में तेलुगु के स्थान को निरूपित किया । डॉ. रेड्डी तेलुगु साहित्य में विद्यामान द्राविड तत्त्वों के मूल्यों और तमिलों के साथ उस के घनिष्ठ संबंधों को प्रकाश में लाये ।

पूतलपट्टु श्रीरामुलु रेड्डी जी के कंबरामायण के तेलुगु अनुवाद ग्रंथ केलिए लिखी अपनी प्रस्तावना में रेड्डी जी ने कहा :

> "हम आंध्र लोग जाति की दृष्टि से द्रविड होने पर भी, शैक्षिक तथा सांस्कृतिक विषयों में आर्यों के प्रति आकर्षित हुए । हमारे छंद संस्कृत से रूपायित हैं । भाषा संस्कृत के प्रतिरूप बन गयी... अवश्य ही प्राचीन काल में तेलुगु और तमिल भाषाओं के बीच गहरा संबंध रहा होगा । समय के बदलने के साथ तेलुगुवालों का साहित्य उन की जीवन पद्धति की भाँति उत्तर की दिशा की ओर बढ़ चली । अगर वह दक्षिण की तरफ़ भी बढ़ गयी होती तो हम दोनों तरफ़ से लाभान्वित हुए होते ।

अनूदित रचनाओं के बारे में उनका अभिमत इस प्रकार का था :

> "आर्य धर्म से संबंधित प्राचीन साहित्य के साथ काव्य, नाटक और अन्य कई रचनाएँ संस्कृत से तेलुगु में अनूदित होने पर भी तमिल साहित्य का अनुवाद तेलुगु में क्यों नहीं हुआ ? इसका कोई कारण नहीं दिखता । संस्कृत से प्रचुर मात्रा में अनुवाद पुनरनुवाद हुआ । देखिए न तेलुगु में कितनी रामायणें हैं और कितने शाकुंतल ! न जाने आगे और कितनी आएँगी । श्रेष्ठकला कृति "मणिमेखलै" के वैभव को तेलुगु में लाने का प्रयत्न इन्हों ने क्यों नहीं किया ? रसज्ञता की कमी के कारण ? या संबंधों की कमी के कारण ?

पाली भाषा के बौद्ध धर्म से संबंधित प्राचीन सहित्यिक ग्रंथों की भी यही हालत है । किसी ने भी अश्वघोष के "बुद्ध चरित्र" को देखने की परवाह नहीं की । उन्हों ने कहा कि जानबूझ कर उन सरे ग्रंथों के प्रति जो अस्पृश्यता का भाव दिखाया गया उस का कारण धार्मिक विद्वेष ही रहा होगा । वे कहते हैं कि "मंत्र साहित्य की भाँति तेलुगु साहित्य में ब्राह्मणों की अधिकता है । नन्नेचोड तथा पाल्कुरिक सोमनाथ जैसे वीर शैव कवियों के गुमनाम हो जाने का भी यही कारण रहा होगा ।"

"भले ही हम ने तमिल साहित्य को अस्पृश्य न माना हो फिर भी उसे अनछुए छोड़ देने का कारण भी यही रहा होगा । कारण कुछ भी रहा हो, जो नुक्सान हमें हुआ वह गंभीर है । भक्ति और ज्ञान की निधियाँ, "पेरियपुराणम्" और "आळ्वार चरित्र" के साथ हम शैव सिद्धांत तत्व से वंचित रह गये । कलात्मक सुख (आनंद या साहित्यिक आनंद)

को खो देना और भी गंभीर नुक्सान है । "मणिमेखलै" जैसे उत्तम कला खंडों से प्राप्त होनेवाले सुख व आनंद से हम वंचित रहे । यह हमारा दुर्भाग्य है । यह इसलिए नहीं कि तमिलों ने हमें नहीं दिया, बल्कि इसलिए कि हम तेलुगुवालों ने उसे लिया नहीं ।"

उपर्युक्त पृष्ठभूति को ध्यान में रख कर कंबरामायण के तेलुगु अनुवाद को रेड्डी जी भारत और श्रीलंका की सेतु के रूप में देखते हैं । आंध्र और तमिलों के बीच के संबंधों के पुनरुद्धार केलिए आपने भरसक कोशिश की और स्वयं आर्य और द्रविड तत्वों के बीच कड़ी के रूप में कार्य किया । साथ में उन के समानांतर तत्त्व; तेलुगु साहित्य के मार्ग और देशी संप्रदायों के सेतु के रूप में भी आप ने काम किया । वास्तव में वे साहित्यिक गणतंत्र के सेतु के निर्माता थे ।

रेड्डी को ख्याति दिलानेवाले अन्य उल्लेखनीय कार्यों में रंगनाथ रामायण का पुनरुज्जीवन है । रंगनाथ रामायण के असाधारण सौंदर्य के वैशिष्ट्य ने अगर आंध्र जनता के दिलों में स्थान बना लिया तो इस का प्रधान कारण है कि रेड्डी जी के द्वारा कृतिकार के व्यक्तित्व के प्रस्ताव (रंगनाथ हैं या गोन बुद्धा रेड्डी) के बिना ही उस का बोधात्मक विश्लेषण करना और उस का जोरदार समर्थन करना है । इस रामायण में मूल वाल्मीकि से जो प्रत्यंतर है, उन्हें कंबन और तुलसी कृत रामायणों में से अशास्त्रीय या प्रक्षिप्त कह कर हमें त्योरी चढ़ाने की आवश्यकता नहीं हैं ।

वेमना के कविता वैशिष्ट्यों को आपने और भी अधिक सशक्त और असंधिग्ध तरीके से समर्थन किया । संभवतः सी. पी. ब्राउन के बाद रेड्डी जी ने ही भरसक कोशिश कर के शताब्दियों तक की उपेक्षा से तथा सुनियोजित ढंग से फैलाये गये विद्वेष से इस संत कवि को बचाया । कुछ समय पहले तक प्रमुख विद्वान, निरंकुश पारंपारिक पंडित और विद्यांडबरियों ने वेमना को बद-जबान और अपलेखात्मक क्रोधी कवि कहकर उन्हें नीचा दिखाते रहे । वेमना निस्संदेह क्रोधी थे और समाजद्वेषी थे । उन के वैसे बनने के कारण भी थे । लेकिन वे कवि थे, सोलह आने कवि थे । रेड्डी जी के मत में महाकवि थे । संक्षिप्तता को विवेक की आत्मा माने तो वेमाना जैसे विवेकी विश्व में और कोई नहीं है । वे स्वयंभू कवि ही नहीं थे सहज कवि भी थे ।"

उन्हों ने आगे कहा कि :

> "रामकृष्ण परमहंस ने अति निम्न जाति के व्यक्ति से भी अपने को और निम्न जाति का कहकर जाति व्यवस्था की भर्त्सना की । भावी पीढ़ी में रामकृष्ण का कविता रूप है वेमना । तुम ईश्वर में एकाकार होना चाहते हो तो तुम्हें मानव में एकाकार होना होगा । जाति प्रथा समाजिक श्राप नहीं प्रत्युत राजनीतिक अपराध भी है ।"

इस बात को दृढ़ता से कहने केलिए रेड्डी जी ने अपने लक्ष्य का भी अधिगमन किया । क्यों कि सामाजिक परिस्थितियों पर टीका - टिप्पणी करने मात्र से कोई महाकवि नहीं बनता । शैली, कलात्मक अपील और नियंत्रण आदि कुछ और निर्णयात्मक तत्व हैं । इन की अतीव प्रधानता चिरकाल से चली आ रही उपेक्षा और प्रतिकूलता को हटाने में काम में आयी होगी ।

कुल मिलाकर कवि के रूप में या आलोचक के रूप में रेड्डी जी की रचनाएँ परिमाण में कम होने पर भी प्रभाव की दृष्टि से वे जानदार और महत्वपूर्ण हैं । शताधिक ग्रंथो के लेखक विस्मृत किये जाते रहे लेकिन रेड्डी जी की रचनाएँ तो तेलुगु साहित्य के अध्येता की आत्माओं में अपने स्थान बनाये हुई हैं ।

रेड्डी जी के जीवन की मुख्य घटनाएँ

1880 दिसंबर, 10 कट्टमंचि गाँव में जन्म ।
1896 स्कूल फ़ाइनल परीक्षा में उत्तीर्ण ।
1897 मद्रास के क्रिश्चियन कॉलेज में एम्.ए. कक्षा में प्रवेश ।
1899 "मुसलम्म मरणमु" काव्य की रचना ।
1901 दर्शन और अर्थशास्त्रों में विशेष योगदान के साथ बी.ए.में उत्तीर्ण ।
1902 भारत सरकार की छात्रवृत्ति पा कर कैम्ब्रिज में प्रवेश ।
1903 राइट पुरस्कार की प्राप्ति ।
1905 कैम्ब्रिज लिबरल क्लब के सचिव और कैम्ब्रिज यूनियन के उपाध्यक्ष के रूप में चुन लिये गये ।
1906 इतिहास ट्राइपास (आनर्स) में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण ।
1907 बड़ौदा के गायकवाड की सहायता से संयुक्त राष्ट्र अमरीका का संदर्शन ।
1908 भारत लौटना और बड़ौदा के महाराजा कॉलेज में उप प्राचार्य के रूप में नियुक्ति ।
1909 महाराजा कालेज के आचार्य के रूप में नियुक्त हो कर मैसूर जाना ।
1912 "भारत अर्थशास्त्रमु" का प्रकाशन ।
1913 मैसूर के युवराजा के साथ यूरोप का संदर्शन ।
1914 "कवित्वतत्वविचारमु" का प्रकाशन ।
1914 केनडा और जापान में शैक्षिक परिभ्रमण ।
1916-17 मैसूर महाराजा कालेज में प्राचार्य ।
1921 मद्रास में राजनीति में प्रवेश ।
1922- 26 मद्रास विधन परिषद में सदस्य ।
1924 आंध्र महा सभा के अध्यक्ष ।
1926 आंध्र विश्वविद्यालय में उप कुलपति के रूप में नियुक्त ।
1930 सरकार की राजनीतिक दमन नीति के विरोध में उप कुलपति पद से इस्तीफ़ा ।
1935 मद्रास विधन परिषद के सदस्य के रूप में चुन लिये गये ।
1935-36 चित्तूर जिला बोर्ड के अध्यक्ष ।
1936 आंध्र विश्वविद्यालय के उप कुलपति के रूप में चुन लिये गये ।

52 डॉ. सी. आर. रेड्डी

1937 अंतर विश्वविद्यालय बोर्ड के अध्यक्ष ।
1942 अंग्रेज सरकार से सर उपाधि की प्राप्ति ।
1949 जनवरी - राज्य की शैक्षिक स्थिति पर रिपोर्ट प्रस्तुत करने के निमित्त मैसूर आह्वानित ।
1949 सितंबर - मैसूर विश्वविद्यालय में प्रो. चान्सलर के रूप में पद भार ग्रहण ।
1951 फ़रवरी 24 - मद्रास में मृत्यु ।

परिशिष्ट

साहित्य : कार्य संपादन के उपकरण के रूप में
(वीरेशलिंगम् के कार्य के प्रति डॉ. सी.आर. रेड्डी की श्रद्धांजलि)

"वीरेशलिंगम् महान शिक्षक और साहित्यकार थे । अधिकांश जनता यह समझती है कि उन का संबंध प्रमुखतः विधवा विवाह से है । उन्हों ने अपने कार्यों को साधने साहित्य को एक साधन के रूप में प्रयुक्त किया । वे तेलुगु भाषा में निष्णात थे । तेलुगु के वे महान लेखक हैं ।"

इन के अतिरिक्त वीरेशलिंगम् पंतुलु को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए उन की प्रशस्ति में आंध्र विश्वविद्यालय के उप कुलपति डॉ. सी. आर. रेड्डी ने 16 अप्रेल, 1948 को मद्रास में उस महान व्यक्ति की जन्मशती के समारोह का शुभारंभ करते हुए और कुछ उद्‌गार व्यक्त किये । डॉ. रेड्डी ने शुभारंभ भाषण में यों कहा :

वीरेशलिंगम् ने प्रथम स्वतंत्रता संग्राम से कुछ वर्ष पहले जन्म लिया । झाँसी लक्ष्मीबाई जैसे व्यक्तियों ने उत्कृष्टता और शौर्य पराक्रमों से भिड़ने पर भी समन्वय की कमी के कारण यह संग्राम विफल रहा । भारत उस वक्त प्रगाढ़ अंधकार और निराशाओं में डूबा हुआ था । हिंदुओं के आंतरिक कमजोरियों से भली भाँति परिचित हमारे देश के महान चिंतकों ने यह महसूस किया कि आंतरिक एकता से प्रगतिशील आधुनिकता की दिशा में यदि परिवर्तन नही लाऐंगे तो सार्थक और संतोषजनक भविष्य की आशा नहीं कर सकते । इस संदर्भ में तीन स्रोतों से प्रकाश की किरणें फूटने लगीं ।

कुछ हद तक यूरोपीय आदर्शों पर आश्रित तरीकों से राजा राममोहन राय ने हमारी संस्कृति और आचरण का पुनर्निर्माण करना चाहा था । अपने मार्ग दर्शन केलिए सहज ही उन्हों ने वेद और उपनिषदों का आश्रय लिया । लेकिन उन की शिक्षा का सार और मानसिकता पाश्चात्य था । लेकिन पाश्चात्यों के अनुकरण करने का अभिमान, और इस अभिमान से बढ़कर हमारी अहम्मन्यता ने विद्रोह किया था, अब भी कर रही है । अगर हमारे विचारों को दूसरे स्वीकार करते हैं तो वह हमारे लिए गौरव का विषय है, लेकिन यदि हम दूसरों के विचारों को स्वीकार करेंगे सो हमारे लिए कलंक की बात होगी ।

राममोहन राय ने अंग्रजी में अपना कार्य किया और अंग्रेजी को भारत में प्राप्त स्थान के कारण उन के संदेश बंगाल तक सीमित न होकर सारे भारत में फैले गये । फिर भी उन का प्रभाव स्थानिक व प्रादेशिक ही रहा।

पश्चिम भारत में वैदिकशिला से तराशे गये - गंभीर दृढ़ निश्चल मूर्ति-से दयानंद सरस्वती ने जन्म लिया । समानता और आधुनिक प्रगति नामक दो जुड़वे आधारों के तहत

वे हिंदू समाज में परिवर्तन लाये थे । लेकिन यह परिवर्तन वेद शिक्षा के आधार पर रूप निर्मित एवं निर्देशित होकर हमारे प्राचीन महान उन्नत सादगी एवं संतुलन की ओर जड़े जमाए हुआ था ।

आर्य समाज अधिक शक्तीशाली एवं युद्धमान निकाय है । वह कोठरी धर्म नहीं है । आर्य समाजी वैदिक अग्नि की आराधना करते हैं । वह प्रज्वलित संगठन है ।

उसी वक्त एक तीसरा प्रकाश भी उदित हुआ । लेकिन यह थोड़ा-सा भिन्न प्रकार का है । विश्व में स्थित शेष सभी के रास्तों से भिन्न, किंतु अत्युन्नत रास्ते से संबंधित । वह प्रकाश है रामकृष्ण परम हंस ।

प्रमुख सुधारवादी :

ऐसे समय में जब कि आत्मा एवं मन के मंथन का कार्य प्रारंभ हो चुका था, कुछ और सुधारवादियों ने जन्म लिया । उन में वीरशलिंगम् कई दृष्टियों से विशिष्ट एवं अद्‌भुत व्यक्ति हैं ।

इस पर विचार करें कि एक साधारण गरीब तेलुगु पंडित जन नेता बना, तिस पर अति कठिनतम समाज सुधर के क्षेत्र में अग्रगामी योद्धा - सम नेता के रूप में आगे बढ़ा । क्या आप इस पर विश्वास करेंगे एक संस्कृत पंडित, तमिल पंडित, कन्नड पंडित, मलयालम पंडित या और कोई भाषा पंडित जो अक्सर उपेक्षित व विवक्त संस्कृति से आबद्ध माना जाता है, और जो कक्षा में उत्साह पूरित छात्रों के परिहास के शिकार बनता है, सो कुछ और हो जाए । यह कभी आप ने सुना ? उन दिनों जब कि भारत आज की भाँति आधुनिक न था, और उदारवादी विदेशी विचारधारा के संपर्क में न आया था, तब एक पंडित ने प्राचीन विचार धारा के खिलाफ़ बेड़ा उठाया । क्या यह आपने कभी सुना ? परिस्थितियाँ उन के प्रतिकूल थीं । फिर भी "गोलियाथ" से टक्कर लिया "डेविड" के समान उन्हों ने समय से मुकाबला कर विजय हासिल की थी ।

वीरेशलिंगम् राजा राममोहन राय के समान उच्च वर्ग के नहीं थे । कलंक रहित शालीनता लिये ऋषि के समान गौरव प्राप्त संपूज्य दयानंद सरस्वती के समान अद्‌भुत व्यक्ति भी नहीं थे । फिर भी राजाराममोहन राय और दयानंद सरस्वती ने जिस तरह से कठिन लड़ाई लड़ी उसी प्रकार की कठिन लड़ाई वीरेशलिंगम ने जारी रखी थी । यौन एवं विधवा-विवाह जैसे विषयों में जिन्हें हम सब अति संवेदनशील मानते हैं, ब्राह्मणों की सनातनता से टक्कर लेना पड़ा । दयानंद सरस्वती की भाँति अपनी दलीलों में कठोरता न प्रदर्शित करते हुए राजाराम मोहन राय के तर्क के मार्ग का अनुसरण करते हुए उन्हों ने प्राचीन शास्त्र ग्रंथों का सहारा लिया । उन्हों ने अतिमानवतावाद या राष्ट्रीयतावाद की अभ्यर्थना नहीं की । नहीं अपनी लड़ाई में ईश्वर या स्वराज्य की अभ्यर्थना की ।

मूलतः वीरेशलिंगम् बुद्धिवादी और मानवतावादी थे । इसलिए उन्होंने सब में प्रवाहमान तार्किक विचारधारा, सामान्य बोध, न्याय की अभिलाषा और मानव की सहृदयता को उद्‌बोधित किया । उनके विरोध में मुहिम चलायी गयी । उन्हों ने मुझे बताया था, उन के निवास को जलाने केलिए कैसे प्रयास किये गये, और किस तरह राजमंड्री के छात्रों ने श्रद्धा - भक्ति से प्रेरित हो कर उन के घर को जलने से बचाया । उन्हों ने मुझे यह भी

बताया कि उन के मित्रों ने जिन्हों ने अपने साथ मिल कर समाज सुधार केलिए व्याख्यान दिये थे । आवश्यकता आने पर अपने घरों में उन सुधारों को अमल में लाने से इनकार कर दिया था । उन्हों ने मुझ से आगे कहा, यह मेरे हृदय विदारक अनुभवों में से एक है । मैं उन मित्रों के नाम बताना नहीं चाहता । वे दिवंगत हो गये हैं, अतः गुजरे हुए समय का और गुजर गये लोगों का विस्मरण करना उचित है । "वीरेशलिंगम् अब भी सजीव हैं । अमर वीरेशलिगम् के बारे में हम चर्चा करेंगे ।

शक्तिशाली व्यंग लेखक :

कार्य संपादन के साधन के रूप में आप ने साहित्य का उपयोग किया । "मोलियर" से प्रभावित हो कर आप ने जो रचनाएँ कीं (तेलुगु में ये रचनाएँ प्रहसन कलाती हैं) वे हिंदू समाज पर तीखा व्यंग करती हैं । मैं समझता हूँ कि आपने हिंदू नेताओं पर निर्दयता से व्यंग बाण छोड़े हैं । वे व्यंग में और परिहास में प्रवीण हैं । जन्म से या फिर संस्कारों से जिन्हें उन्हों ने ढोंगी समझा उनको आड़े हाथ लिया । शास्त्रार्थ में उन्हों ने अपने विरोधियों के प्रति उचित भाव प्रदर्शित नहीं किया । उन के निष्कर्ष कुछ भी रहे हो यह तो मानना पड़ेगा कि उन के विरोधी भी कर्तव्यनिष्ठ और ईमानदार थे ।

स्विफ्ट के "गलीवर ट्रेवल्स" के अनुकरण पर लिखित अपने "सत्यराजा पूर्व देश यात्रलु" (सत्य राजा के पूर्वी देशों की यात्राएँ) में आप ने परिस्थितियों को उलट कर के पुरुषों के द्वारा स्त्रियों के प्रति हुए अन्याय व अत्याचारों के प्रतीकार के रूप में स्त्रियों के निरंकुश शासन में पुरुषों के उत्पीड़न का वर्णन दर्शाया ।

कहते हैं कि प्रसिद्ध जर्मन लेखन हीन (HEINE) ने यह इच्छा जाहिर की थी कि उन की समाधि-शिला पर कलम की जगह तलवार को उत्कीर्ण किया जाए । इसी भाँति वीरेशलिंगम् की समाधि-शिला पर या उन के किसी स्मारक पर उत्कीर्ण योग्य चित्र तलवार है कलम कदापि नहीं । कोई चाहे तो अनुबम को चित्रित करें जिस से कि यह स्मरण किया जा सके कि उन के कार्यों ने आंध्र समाज में विद्यमान विध्वंसक परिस्थितियों को ध्वस्त किया था ।

विधवा-विवाह के साथ उन के संबंध को अधिक तूल देकर जोड़ा जाता है । विधवा विवाह उन कार्यक्रमों में से एक संवेदनात्मक कार्यक्रम था जिस ने सामान्यतया हिंदुओं को और विशेषतया ब्राह्मणों में चिड़चिड़ापन और उत्तेजना पैदा की थी । लेकिन उन का यह कार्यक्रम तर्कसंगत होने के साथ समग्र था । स्त्री शिक्षा केलिए, स्त्रियों के अधिकारों के लिए और विशेषकर पुरुषों और पतियों के समतुल्य अधिकारों केलिए वे सतत संघर्षशील रहे । इस साहसी एवं निर्भीक व्यक्तित्व जनता के विरोध और उस की असहमति से कभी पीछे नहीं मुड़ा । विश्वसनीय और प्रतिबद्ध अनुयायियों एवं कार्यकर्ताओं के एक छोटे से समुदाय से वे सदा परिवेष्ठित रहते थे । उन की रचनाएँ पूरे आंध्र में बिकती थीं । मैंने उन से सुना कि उन दिनों जब कि डाक टिकट का व्यय आज से बहुत कम था, रु. 30/- जो रकम एक तेलुगु अध्यापक का मासिक वेतन हुआ करता था, हर माह डाक टिकट में खर्च करते थे ।

निस्संदेह उन्हों ने अपनी रचनाओं से धन का अर्जन किया । लेकिन धनार्जन उन का लक्ष्य न था । प्राचीन रूढ़िवादिता से डट के मुकाबला कर उस का खात्मा करना उन का असली उद्देश्य था । उन्हों ने अटल तर्कणावाद और मानवतावाद के पथ पर एक एक कदम आगे बढ़ाते हुए प्रगति को हासिल करते हुए अपने कार्यक्रमों को आगे बढ़ाया । आखिरकार अपने जनेऊ, साथ में आपने कुल तथा सनातन हिंदू धर्म को भी त्याग दिया । उन का ब्रह्म समाज आंध्र से बाहर उत्पन्न ब्रह्म समाज से अपनाया गया सिद्धांत न होकर उन में से ही सीधे व सरल रूप से विकसित विश्वास था । इस के बावजूद वे अपने को ब्रह्म समाजी कहा करते थे ।

साहित्यकार :

वीरेशलिंगम् तेलुगु में महान पंडित और तत्कालीन ख्याति प्राप्त सहित्यकारों में एक रहे । उन्हों ने कालिदास की रचनाओं एवं कुछ काव्यों का अनुवाद किया । शुद्धनिरोष्ठ्य निर्वचन नैषधमु (ऐसी रचना जिस में ओष्ठ्य ध्वनियों का और गद्य का परित्याग हो) जैसी रचना कर कृत्रिम शैली का भी आपने प्रदर्शन किया । उन्हों ने सुमधुर एवं श्रेष्ठ साहित्यिक रचनाएँ भी कीं, वे साहित्यिक कलाबाजियाँ करने में भी सिद्ध हस्त थे ।

वर्तमान समय में तेलुगु में प्रचलित दो साहित्यिक प्रक्रियाओं, उपन्यास और व्यंग लेखन की रचना में वे अग्रणी साहित्यकार हैं । कार्य साधक के रूप में आप ने अमरता प्राप्त की । हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक के हिंदू समाज में वे शाश्वत कृतज्ञता - भाजन हुए । आज स्त्रियों का संपत्ति पर हक हासिल है, मानवता पर कलंक माने जानेवाले बाल्य विवाह कानूनन जुर्म माने जाते हैं, विधवा-विवाह आलोचना से पर हो कर आम हो गये हैं, हिंदू समाज में विध सम्मत विवाहों की पूरी आजादी हैं, समाज में जाति प्रथा का अब कोई आधिपत्य नहीं हैं तो आइए वीरेशलिंगम् की पावन व अमर स्मृति में कृतज्ञतापूर्वक तेजोमय ज्योति को प्रज्वलित करें और अपने लोगों से विशेषकर महिलाओं से कहे कि वे श्रद्ध - भक्ति से वीरेशलिंगम् को हाथ जोड़ें ।

अब हमारे देश में रजिस्ट्री विवाह, अंतर-जाति के विवाह, हरिजनों का मंदिर - प्रवेश, होटलों में सामाजिक स्तर भेद निषेध आदि विषयों पर कानून बन गये हैं । इन कानूनों को बल प्रदान करने, हमारे महान सुधारकों के कार्यों को आगे बढ़ाने में, जनता में विश्वास एवं सदाचार की वृद्धि करने में हमें अभी बहुत कुछ करना है ।

आइए ! विश्वास भावना एवं सदाचार के प्रचार तथा प्रवर्धन के कार्य केलिए पुनरंकित हो कर वीरेशलिंगम् के प्रति अपनी श्रद्धा और कृतज्ञता निवेदित करें ।

संदर्भ ग्रंथ सूची

डॉ. सी. आर. रेड्डी की रचनाएँ :

तेलुगु

1. कवित्वतत्वविचारमु (कविता की प्रकृति की खोज) - आलोचना, 1989 - आंध्र विश्वकला परिषत्तु, 1941
2. मुसलम्म मरणमु - काव्य, 1899 आंध्र ग्रंथालय ट्रस्ट, पटमटा (कृष्णा जिला) प्रथम संस्करण, 1940, द्वितीय संस्करण, 1960
3. व्यास मंजरी ...समीक्षात्मक निबंध .. आंध्र विश्वकला परिषत्तु, वाल्टेर ...,1947
4. भारत अर्थशास्त्रमु - काळहस्ति तम्मारावु एण्ड सन्स, राजमंड्री .. 1958
5. पंचमी (पाँच निबंधों का संग्रह) ...आंध्र विश्वकला परिषत्तु वाल्टेर.. 1954

अंग्रेजी

1. कांग्रेस इन आफ़िस (संविधानगत समस्याओं पर भाषण और अन्य रचनाएँ) ... मुस्लिम पब्लिशिंग हाउस, माउण्ट रोड, मद्रास-2 (1940)
2. डॉ. सी. आर. रेड्डी - एसेस एण्ड एड्रसेस - संपादक डॉ. के. आर. श्रीनिवास अय्यंगार, आंध्र विश्वकला परिषत्तु, वाल्टेर (1966)
3. स्पीचेस एण्ड एसेस (वेमना और अन्य विषयों से संबंधित) ..नेल्लूर प्रोग्रेसिव यूनियन, एल. पी. हाल (टाऊन हाल) नेल्लूर - 1 आं. प्र.
4. एस्से आन कैलासम्स एकलव्य ...'दि परपस', में टी.पी. कैलासम् से प्रकाशित (बी. एस. रामा राव, जयनगर, बेंगलूर -11 प्रथम संस्करण 1945, द्वितीय संस्करण, 1966)
5. फोरवर्ड टु के. सुंदरराघवनस बायोग्राफ़ी आफ़ पी. आनंदाचार्युलु (तमिल में)
6. प्रिफेस टु एम. एन. रामस "फ्रॅगमेण्ट्स आफ़ प्रिजनर्स डायरी
7. डेमोक्रसी (दि राइट हानरबल वी. एस. श्रीनिवास शास्त्री एण्डोमेण्ट लेक्चेरस) मद्रास.. 1949
8. स्पीचेस आन यूनिवर्सिटी रिफार्मस - मैसूर
9. आर्टिकल्स आन आर. टी. सी. एण्ड एड्रेसेस आन अदर सबजेकट्स (1930-31)

अन्य रचनाएँ : -

तेलुगु

1. कवित्वतत्वविचार विमर्शनमु (डॉ. सी. आर. रेड्डी की पुस्तक की आलोचना - काळूरि व्यास मूर्ति के द्वारा - वाविळ्ल प्रेस , मद्रास 1940)
2. उषः किरणालु ...(19 वीं शताब्दी के साहित्य की समीक्षा) यंडमूरी सत्यनारायण रावु (उत्तम साहिती मानिक्य भवन, रामचंद्रपुरम, 1960)
3. आधुनिकांध्र कवित्वमु ..(आधुनिक तेलुगु कविता परंपरा और प्रयोग).. डॉ. सी. नारायण रेड्डी (1962)
4. डॉ. सी आर. रेड्डी - जी वेंकट सुब्बय्या - (देशी कविता मंडली, विजयवाडा - 1963)
5. तेलुगु विज्ञान सर्वस्वमु (तेलुगु विश्वकोश) तृतीय भाग - तेलुगु भाषा समिति - मद्रास
6. तेलुगु साहित्यम् पै आंग्ल प्रभावमु (तेलुगु साहित्य पर अंग्रेजी का प्रभाव डॉ. के. वीरभद्र रावु (लेखक द्वारा प्रकाशित - 1960)
7. चित्तूर जिला रचयितल समावेश प्रत्येक संचिक (चित्तूर जिला लेखक सम्मेलन - स्मारिका) 1968
8. नेनु .. नव्यांध्रमु (आत्म कथा) - ए. काळेश्वर रावु, विजयवाडा
9. आंध्र रचयितलु (तेलुगु लेखक) मधुनापंतुल सत्यनारायण शास्त्री, (1950)

अंग्रेजी

1. स्टडीस इन कळापूर्णोदयम् - जी. वी. कृष्णाराव (साहिती केंद्रम्, तेनाली - 1956)
2. हिस्टरी आफ़ तेलुगु लिटरेचर - जी.पी. सीतापति (साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली - 1968)
3. कान्टेम्परी इंडियन लिटरेचर - ए सिंपोजियम् (साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली - 1957)
4. लिटरेचरस इन द मोडर्न इंडियन लँग्वेजेस : (पब्लिकेशनस डिविजन, 1957)
5. मोडर्न इंडियन लिटरेचर्स - संपादक, डॉ. नरेंद्र
6. मेन इन द लाइम लाइट - खासा सुब्बा रावु (मद्रास, 1941)
7. साइड लाइट्स - 'शका' खासा सुब्बारावु लेंग्वेज पब्लिकेशनस, मद्रास, 1944
8. माइ पोरट्रेट गैलरी - के. ईश्वर दत्त (त्रिवेणी पब्लिशर्स, मचिलीपटनम्,1957)
9. स्ट्रीट आफ़ इंक (आत्म कथा) के. ईश्वर दत्त (त्रिवेणी पब्लिशर्स, मचिलीपटनम्, 1956).
10. स्पार्कस एण्ड फ़्यूम्स - के. ईश्वर दत्त (आंध्र के नेताओं के रेखाचित्र) मद्रास, 1929.

116054
17-11-04

कट्टमंचि रामलिंगा रेड्डी (1880-1951) शिक्षाविद्, राजनीतिज्ञ, निबंधकार, अर्थशास्त्री, कवि एवं आलोचक थे; सभी विशेषताओं से परिपूर्ण एक व्यक्तित्व । उन्होंने तेलुगु और अंग्रेजी दोनों भाषाओं में रचनाएँ कीं जो उन के प्राचीन साहित्य के अध्ययन और उन के प्रति अनुराग के साथ ही उन के आधुनिकता-बोध को उद्घाटित करती हैं । डॉ. रेड्डी को साहित्य के द्रविड स्कूल के आधुनिक प्रवक्ता ठीक ही कहा जा सकता है । वे तेलुगु साहित्य में विद्यमान द्रविड तत्त्वों के मूल्यों और तमिलों के साथ उस के घनिष्ट संबंधों को प्रकाश में लाये । कवि के रूप में या आलोचक के रूप में रेड्डी जी की रचनाएँ परिमाण में थोड़ी होने पर भी, प्रभाव की दृष्टि से जानदार और महत्त्वपूर्ण हैं ।

इस पुस्तक के लेखक डॉ. डी. आंजने
में अंग्रेजी में विस्तार से लिखा है । या
पुस्तक "विंडो आन दि वेस्ट" अधिव
पत्रकार हैं तथा आप ने भारत सरक
अन्य संस्थाओं में संपादक के रूप में

Library IIAS, Shimla
H 891.482 092 R 246 R
00116054

Dr. C. R. Reddy (Hindi), Rs. 15
ISBN 81-7201-284-5